शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 8 अंक : 10 1 मई 2016

(वैशाख-ज्येष्ठ, विक्रम संवत् 2073)

संरक्षक
मुकुन्द कुलकर्णी
प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल 8947984604
नौरंग सहाय भारतीय 9460142051
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मूल्यांकन के स्थान पर समग्र विकास का लक्ष्य ❑ डॉ. रेखा भट्ट

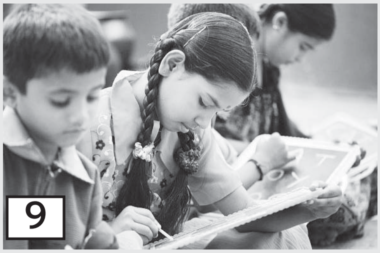

9

आधुनिक परीक्षा पद्धति सूचनाओं के अधिग्रहण तक सीमित है अतः सीखने के बौद्धिक एवं भावनात्मक पक्षों में सन्तुलन नहीं होता। विद्यार्थी की शिक्षण में सक्रियता कम हो जाती है। वह सीखने की प्रक्रिया में पूरी तरह प्रतिभागिता नहीं करता। रोजगारोन्मुखी एवं व्यवसायिक शिक्षा का प्रसार विश्व व्यापार में लाभप्रद स्थिति के लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को बढ़ावा देता है।

अनुक्रम

4.	मूल्यांकन व परीक्षा व्यवस्था की चुनौतियाँ	- सन्तोष पाण्डेय
6.	परिष्कृत मेधा का आधार-सतत् मूल्यांकन	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
12.	परीक्षा सुधार : नहीं निकला सार	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
14.	परीक्षा, मूल्यांकन और चुनौतियाँ	- बजरंगी सिंह
19.	Assessment and Education	- Dr. A. K. Gupta
21.	Centre's plan : Must meet minimum ...	- Ritika Chopra
23.	रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शिक्षा दर्शन	- बजरंग प्रसाद मजेजी
26.	मुफ्त शिक्षा का क्या हुआ	- जावेद अनीस
28.	टयूशन का बढ़ता आकर्षण	- पीयूष द्विवेदी
30.	पढ़ाई की पोल	- रामप्रकाश कुशवाहा
32.	कठिन प्रश्नों की जड़ें	- आलोक रंजन
34.	परवरिश का परिवेश	- चैतन्य नागर
36.	प्रयास सही, नतीजे नहीं	- पी. पुष्कर
38.	सरकार ने पल्ला झाड़ा तो कैसे चलेंगे विश्वविद्यालय	- प्रो. जांध्यला बी.जी. तिलक
40.	गतिविधि	

Some questions about Semester and Annual System

❑ Dr. TS Girishkumar

As far as academic Philosophy is concerned, it is still India, and not Bharat. Common distinctions are made between Indian and Western Philosophies in Universities. Let us teach European Philosophy in full swing; let us also be running with the others in the race, but let us positively show the Bharatiya aspect to European Philosophy in class rooms. For everything discussed in Europe, there is always a Bharatiya aspect. They are already discussed in our ancient texts, or there already exists a clear perspective. This must also be delivered to our students besides books from Europe.

16

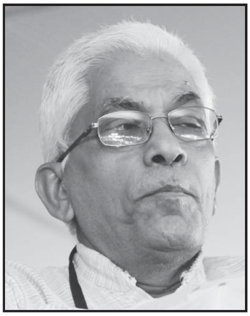

भारतीय शिक्षक परिदृश्य की एक और विशेषता कागजी डिग्री प्रदान करने वाली व्यवस्था है। शैक्षिक, परीक्षा व मूल्यांकन में सुधारों के अभाव में विश्वविद्यालय बिना कठोर परिश्रम, अध्ययन-अध्यापन के सहायक पुस्तकों, गाइड बुक्स, प्रश्नोत्तरी के अध्ययन व अनुचित साधनों के प्रयोग द्वारा परीक्षा उत्तीर्ण करने व इस प्रकार से प्राप्त उपाधि द्वारा नौकरी में प्रवेश पाने की संभावना ने परीक्षा सुधारों व मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन को असंभव सा बना दिया है। इसका उपचार ढूंढ़ा जाना समय की आवश्यकता है। ये सभी वे कतिपय परीक्षा व मूल्यांकन से संबंधित चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान निकाले बिना शिक्षा व्यवस्था अपने लक्ष्य प्राप्ति में समर्थ नहीं होगी।

मूल्यांकन व परीक्षा व्यवस्था की चुनौतियाँ

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

देश के सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक विकास व राष्ट्र निर्माण को दृष्टिगत कर दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति एवं तात्कालिक समस्याओं का समाधान करने वाली शिक्षा नीति की आवश्यकता होती है। देश में ऐसी शिक्षा नीति विकसित करने हेतु अनेक आयोगों, विशेषज्ञ समितियों का गठन होता रहा है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की वर्तमान सरकार भी एक ज्ञान आधारित विकसित समाज व राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य को पूर्ण करने वाली शिक्षा नीति को अपनाने की प्रक्रिया में है। शिक्षा नीति में जहाँ पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों, योग्य व प्रशिक्षित शिक्षकों की उपस्थिति अति आवश्यक होती है, उतनी ही आवश्यक एक उपयुक्त वस्तुपरक मूल्यांकन व परीक्षा प्रणाली की होती है। शिक्षानीति में परीक्षा व्यवस्था मूल्यांकन प्रणाली को कमतर कर नहीं आंका जा सकता है। उपयुक्त वस्तुपरक मूल्यांकन व्यवस्था ही शिक्षानीति के उद्देश्य प्राप्ति का सशक्त माध्यम बन सकती है। भारत अनेकताओं में एकता वाला अद्‌भुत देश है। विशाल भू-भाग एवं विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं वाली विशाल जनसंख्या जहाँ अनेकता को प्रस्तुत करती है, वहीं इन अनेकताओं में एकता के सामान्य सूत्र सदियों से पुष्ट हुये हैं। प्राचीन काल से ही एकता का एक सूत्र गुरुकुल व्यवस्था रही है। गुरुकुल व्यवस्था में सम्पूर्ण भारत में एक प्रकार की शिक्षा, प्रशिक्षण व व्यावहारिक, सांसारिक ज्ञान प्रदान करने की परंपरा रही। इस व्यवस्था में व्यक्ति की सम्पूर्ण क्षमताओं व समानताओं के विकास हेतु पर्याप्त शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था रही, परन्तु मैकालयी शिक्षा पद्धति को विदेशी शासकों द्वारा प्रोत्साहित किये जाने से शिक्षा के उद्देश्य बदल गये। नये उद्देश्यों के अनुरूप न केवल शिक्षा का कन्टैन्ट ही बदला वरन शिक्षण पद्धति तथा परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था में बदलाव आया। सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के स्थान पर वर्ष भर एक निश्चित पाठ्यक्रम का शिक्षण प्राप्त कर समय-समय पर परीक्षण व अर्द्धवार्षिक व वार्षिक परीक्षा के आधार पर छात्र ने कितना ग्रहण (Retain) किया का मूल्यांकन आंकिक पैमाने पर होने लगा। आंकिक मूल्यांकन के आधार पर ही योग्यता व मेधा का निर्धारण होने लगा। परन्तु यह मूल्यांकन किस सीमा तक वस्तुपरक रहा, इस पर सदैव प्रश्न चिह्न लगा। परीक्षा व मूल्यांकन की इस व्यवस्था ने शीघ्र सांस्थानिक रूप ग्रहण कर लिया और यह भारत की परंपरागत मूल्यांकन व परीक्षा व्यवस्था बन गई। स्मरणीय है कि इस व्यवस्था का विकास भारत में विदेशी शासन को पुष्ट करने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की आकाँक्षाओं व अपेक्षाओं ने करवट ली। शिक्षक उद्देश्य बदले, तात्कालिक समस्याओं के समाधान में शिक्षा व्यवस्था की कमियाँ उजागर होने लगी। उत्तरोत्तर रूप में अनुभव किया जाने लगा कि परंपरागत परीक्षा प्रणाली व मूल्यांकन व्यवस्था को परिवर्तित करना आवश्यक है। परन्तु इसकी वैकल्पिक व्यवस्था क्या हो पर विचार जारी रहा।

देश में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक प्रभावी व वस्तुपरक मूल्यांकन व्यवस्था को एक समान रूप से संपूर्ण देश में सभी स्तरों की शिक्षा में अपनाने में अनेकों बाधायें हैं जिनके उपयुक्त समाधान किये बिना वैकल्पिक परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था को अपनाना दुष्कर कार्य होगा। वर्तमान में देश की शिक्षा व्यवस्था अनेक वर्गों में बँटी हुई, इनमें शहरी-ग्रामीण शिक्षा, निजी शिक्षण व्यवस्था व सरकारी स्कूलों व शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था, होम एक्जामिनेशन की सुविधा, शिक्षा को खरीदने में समर्थ वर्ग व इससे वंचित वर्ग के लिये शिक्षा व्यवस्था, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, उच्च शिक्षा, विशिष्ट शिक्षण संस्थानों की शिक्षा व्यवस्था, व्यावसायिक प्रोफेशनल, तकनीकी चिकित्सा जैसी शिक्षा व्यवस्था, शोध व अनुसंधान संस्थानों में मूल्यांकन व्यवस्था इत्यादि। इसकी जटिलता तब और बढ़ जाती है जब सभी शिक्षा प्रदान करने के ध्येय से बनाये गये शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत कक्षा एक से आठ तक रोके नहीं जाने की व्यवस्था (No detention Policy) तथा परीक्षाओं को तनावमुक्त बनाने की दृष्टि से सार्वजनिक परीक्षाओं से परिहरण जैसी व्यवस्थायें एक समान व वस्तुपरक एक प्रभावी परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था को अपनाने में बाधा उत्पन्न करती है। विभिन्न स्तरों पर प्रवेश व रोजगार हेतु प्रतियोगी परीक्षाओं ने मूल्यांकन जटिलता को बढ़ाया है। इन सभी वर्गों में अपनायी जाने वाली परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था प्रतिभा को उभारने व अभिव्यक्त करने के स्थान पर आधारित ज्ञान को ही प्रेरित करती है। भीषण प्रतिस्पर्धी अंक प्रतियोगिता व अंक-प्रसार (Marks Inflation) ने चिन्ता व तनाव को चिन्तनीय स्तर तक बढ़ा दिया है। श्रेष्ठतम स्कोर प्राप्त करने की चिन्ता ने कोचिंग

व्यवसाय को अकल्पनीय सीमाओं के पार पहुँचा दिया है। परिवार की अपेक्षाओं पर अवसाद का शिकार बनाया है, जिसकी परणति आत्महत्या तक में प्रकट होती है। क्या ये सभी एक उचित व प्रभावी मूल्यांकन व्यवस्था के अंग होने चाहिये? इनका प्रभावी हल ढूँढ़ना आवश्यक है।

देश में सभी को शिक्षा प्रदान करने की लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से शिक्षा के अधिकार को प्रभावी बनाया गया है। देश में व्याप्त व्यापक गरीबी के कारण अभिभावक बच्चे को स्कूल भेजने से बचते हैं। यदि भेजना भी पड़े तो उसे निरन्तर स्कूल भेजने के प्रति जागरूक नहीं रहते हैं। अन्य कारणों के साथ दूरस्थ भावों में शिक्षा के लिये आशाजनक वातावरण नहीं बनाते हैं। यद्यपि मध्याह्न भोजन योजना के माध्यम से स्कूलों में उपस्थिति को आकर्षक बनाया गया है, परन्तु शिक्षकों की कमी, शिक्षकों को अनेकानेक इतर कार्यों में लगाये रखने के कारण अध्ययन, अध्यापन का न तो वातावरण होता है और न ही कोई प्रेरणा। इसमें आठवीं कक्षा तक किसी को नहीं रोके जाने की नीति का परिणाम है कि बहुसंख्यक ग्रामीण विद्यालयों में सीखने का स्तर बहुत ही नीचा है। समय-समय पर प्रकाशित होते सर्वेक्षणों से प्रकट होता है। इस नीति के पीछे तर्क दिया जाता है, कि अध्यापक छात्र का निरन्तर अवलोकन द्वारा छात्र की प्रगति पर ध्यान देगा और उसके सीखने के स्तर को सामान्य स्तर पर लाने के विशेष उपाय करेगा। परन्तु बिना किसी फिल्टर-व्यवस्था के ऐसा होना संभव है? वास्तव में हो यह रहा है कि रोके नहीं जाने की नीति व फिल्टर व्यवस्था के अभाव के इन स्कूलों का वातावरण न पढ़ने और न पढ़ाने का बनता जा रहा है। उच्च प्राथमिक स्तर पर किसी न किसी प्रकार के फिल्टर के रूप में परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था विकसित करना शिक्षा के व्यापक हित में होगा।

कमजोर उच्च प्राथमिक शिक्षा का माध्यमिक शिक्षा पर गंभीर रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बड़ी संख्या में प्रवेश योग्य विद्यार्थियों की संख्या माध्यमिक स्कूलों में उपलब्ध संसाधनों पर भारी दबाव डालता है जिससे शिक्षण का स्तर प्रभावित होता है। माध्यमिक स्तर परीक्षा से उत्पन्न दबाव से मुक्ति दिलाने के लिये सार्वजनिक परीक्षा या होम-परीक्षा का विकल्प दिया गया है। स्वाभाविक रूप से गृह परीक्षा का विकल्प ही व्यापक रूप से प्रचलित हुआ है। गृह परीक्षा या बोर्ड की परीक्षा के साथ-साथ ही निरन्तर व समग्र मूल्यांकन की व्यवस्था को अपनाया गया है, तथा अंकों के साथ-साथ ग्रेड व्यवस्था भी लागू की गई है, जिसमें अंकों के समूह को ग्रेड में बदला गया है। एक अंक समूह को एक ग्रेड में रखने का लक्ष्य है कि अंकों के मामूली अन्तर एक ही ग्रेड प्रदान कर समान प्रतिभा का द्योतक माना जाये। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा जो उच्च शिक्षा, रोजगार, व्यवसायों, तकनीकी, विधि, मेडीकल शिक्षा का प्रवेशद्वार है, में 12वीं परीक्षा को ही अनिवार्य रूप से सार्वजनिक परीक्षा बनाने का प्रावधान किया गया है। यहाँ निरन्तर व समग्र मूल्यांकन को अनिवार्य बनाया गया है। आंकिक मूल्यांकन के साथ-साथ ग्रेड प्रदान करने की भी व्यवस्था है। निरन्तर व समग्र मूल्यांकन द्वारा छात्र के बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास को लक्षित किया गया है। परन्तु निरन्तर व समग्र मूल्यांकन कितना वस्तुपरक रहेगा इसकी सुनिश्चित व्यवस्था नहीं हो पायी है। 12वीं की परीक्षा सार्वजनिक बोर्डों द्वारा लिये जाने के बावजूद सीबीएसई तथा राज्यों के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की मूल्यांकन व्यवस्था में भारी अन्तर होता है। राज्यों के बोर्डों की परीक्षा का आँकिक मूल्यांकन अधिक कंजरवेटिव है। इस अन्तर के कारण आईआईटी सहित अनेक प्रवेश परीक्षाओं और प्रवेश नियमों 'एक समान स्तर' के लिये परसैंटाइल व्यवस्था का सहारा लेते हैं। आवश्यकता है कि सतत् व समग्र मूल्यांकन को किस प्रकार अधिकतम रूप से वस्तुपरक व प्रभावी बनाया जाय, जिससे कि यह छात्र संपूर्ण व्यक्तित्व के प्रकटीकरण का द्योतक बन सके। आंकिक मूल्यांकन व ग्रेड व्यवस्था में सीबीएसई व राज्य के बोर्डों के अन्तर न्यूनतम करने के उपाय किये जायें।

उच्च शिक्षा का देश के विकास, ज्ञान के व्यापक प्रसारण में भारी योगदान होता है। उच्च शिक्षा शोध व अनुसंधान के माध्यम से नये ज्ञान के सृजन में योग देती है। परन्तु भारत में उच्च शिक्षा अभी भी परंपरागत शिक्षण पद्धति व वार्षिक परीक्षा आधारित आंकिक मूल्यांकन पर ही निर्भर है। पाठ्यक्रमों में समयानुकुल व अनवरत रूप से अद्यतन किये जाने के कारण विश्वविद्यालयों शिक्षा में योग देने में असमर्थ रहे हैं। वैश्विक ज्ञान का विस्तार विस्फोटक गति से हो रहा है। ऐसे भारतीय विश्वविद्यालय निरन्तर पिछड़ते जा रहे हैं। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, विशिष्ट अध्ययन संस्थानों व सेंटर ऑफ एक्सीलैंस योजना के माध्यम से उच्च शिक्षा में परिवर्तन के प्रयास हो रहे हैं परन्तु राज्य के विश्वविद्यालय व्यापक रूप से पिछड़ रहे हैं। इन विश्वविद्यालयों में शैक्षिक परिवर्तनों, परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन के लिये उत्साह का अभाव है। राज्य सरकारों द्वारा विश्वविद्यालयों का पर्याप्त वित्त पोषण नहीं किया जाना मुख्यरूप से उत्तरदायी है? नैक के द्वारा विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों का मूल्यांकन किये जाने व उसके द्वारा दिये गये ग्रेड के अनुरूप यूजीसी अनुदान व्यवस्था इस स्थिति में सुधार ला सकती है। उच्च शिक्षा में सुधार तभी संभव है, जब पाठ्यक्रमों में निरन्तर सुधार हो। पाठ्यक्रम व शिक्षण व्यवस्था सेमेस्टर आधारित हो जिसमें केवल एक के स्थान पर दो परीक्षाओं के स्थान पर अधिक अध्यापन अनवरत अध्ययन पर आधारित हो। अन्तर्विषयक (Interdiciplinary Approach) अध्ययन पर जोर दिया जाय। शोध पत्र, लघु शोध प्रबंध पर बल दिया जाय, तो उच्च शिक्षा में स्वागत योग्य परिवर्तन संभव है।

भारतीय शिक्षक परिदृश्य की एक और विशेषता कागजी डिग्री प्रदान करने वाली व्यवस्था है। शैक्षिक, परीक्षा व मूल्यांकन में सुधारों के अभाव में विश्वविद्यालय बिना कठोर परिश्रम, अध्ययन-अध्यापन के सहायक पुस्तकों, गाइड बुक्स, प्रश्नोत्तरी के अध्ययन व अनुचित साधनों के प्रयोग द्वारा परीक्षा उत्तीर्ण करने व इस प्रकार से प्राप्त उपाधि द्वारा नौकरी में प्रवेश पाने की संभावना ने परीक्षा सुधारों व मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन को असंभव सा बना दिया है। इसका उपचार ढूँढ़ा जाना समय की आवश्यकता है। ये सभी वे कतिपय परीक्षा व मूल्यांकन से संबंधित चुनौतियाँ हैं जिनका समाधान निकाले बिना शिक्षा व्यवस्था अपने लक्ष्य प्राप्ति में समर्थ नहीं होगी। ❑

परिष्कृत मेधा का आधार-सतत् मूल्यांकन

शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा व मूल्यांकन व अभ्यास का विशेष महत्त्व है, यह एक ऐसा उपकरण है जो विद्यार्थी के अकादमिक मापदण्डों के विश्लेषण के साथ यह भी प्रमाणित करता है कि विद्यार्थी शैक्षिक मानकों पर खरा उतरता है या नहीं। यह विद्यार्थी को निष्पादन (performance) का निष्पक्ष संकेत भी देता है। सतत् मूल्यांकन से विद्यार्थी नियमित, पठन-पाठन, करता है स्टेज पर आकर सभी शिक्षकों के सामने अपनी पावर प्वाइन्ट पर प्रस्तुति देने से उसमें आत्मबल, बढ़ता है। स्वाभिमान व आधुनिक अधिगम प्रणाली के प्रति अभिरुचि बढ़ती है, लघुशोध, के द्वारा विद्यार्थी में वैज्ञानिक अभिरुचि विकसित होती है। वैज्ञानिक अवधारणाओं का वह आकलन कर वह अपनी मेधा के द्वारा उसमें अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों व सामाजिक सरोकारों का समावेश कर विज्ञान व मानविकी के सकारात्मक उपयोग की ओर अग्रसर होता है।

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

भारतीय उच्च शिक्षा, विस्तार के आधार पर विश्व में तीसरे स्थान पर है साथ ही शिक्षा प्रदाता के रूप में भी देश का विशिष्ट स्थान है। शिक्षा के अन्तर्निहित उद्देश्यों जैसे-पहुँच (access), समानता (equity), गुणवत्ता, अनुसंधान (research) व नवाचार (innovation) आदि को प्राप्त करने के लिए सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा रहा है। ई-शिक्षा (e-education), आभासी प्रयोगशालाएँ (virtual laboratories), ऑन-लाइन शिक्षक उपलब्धता आदि डिजिटल क्रांति की देन है। संस्थागत उत्कृष्टता (Institutional excellency), शिक्षण, अधिगम पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन आदि का भी शिक्षा-व्यवस्था में योगदान है। प्रस्तुत आलेख में पारम्परिक अंक व्यवस्था (conventional marks system) परीक्षा प्रणाली, मूल्यांकन व ग्रेडिंग व्यवस्था (grading system) व विकल्प आधारित क्रेडिट व्यवस्था (choice based credit system) पर विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने देश के उच्च शिक्षा तंत्र में समानता, दक्षता व उत्कृष्टता लाने के लिए विभिन्न निर्देश दिए। आयोग द्वारा किए गए प्रयासों से उच्च शिक्षा में सुधार देखे जा सकते हैं। परंतु देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में, परीक्षा संचालन, मूल्यांकन पद्धति व ग्रेडिंग (grading system) प्रणाली में विभिन्नता है। सम्पूर्ण देश में विद्यार्थियों की कार्य निष्पादन (performance) के आधार पर समान ग्रेडिंग व्यवस्था होनी चाहिए ताकि एक राज्य से दूसरे राज्य या विश्वविद्यालय से अन्यत्र प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थियों को प्रवेश की पहुँच (access) सुलभ हो। वर्तमान में पारम्परिक (conventional system) प्रणाली या ग्रेड प्रणाली प्रचलित है, पारम्परिक प्रणाली में एक बार परीक्षा का प्रावधान है जिसके आधार पर अंक प्रदान किये जाते हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में अर्जित अंकों को पत्र-ग्रेड (letter-grade) में परिवर्तित करने का प्रावधान है। यही पत्र-ग्रेड उच्च संस्थाओं द्वारा अकादमिक उपयोग में काम आता है। अत: देश में समान व सतत् मूल्यांकन पद्धति होनी चाहिए। ग्रेडिंग प्रणाली

में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के साथ उपस्थिति की अनिवार्यता का प्रावधान है, समयबद्ध (time bound) सेमेस्टर परीक्षा, प्रायोगिक परीक्षा व अन्य अकादमिक कार्य होते हैं। उनके आधार पर क्रेडिट प्वाइन्ट (credit point), क्रेडिट (credit), ग्रेड प्वाइन्ट (credit point), ग्रेड-पत्र (grade-letter), सेमेस्टर ग्रेड प्वाइन्ट औसत (Semester Grade Point Average, SGPA), संचयी ग्रेड प्वाइन्ट औसत (Cumulative Grade Point Average, CGPA) का निर्धारण होता है। इसके अन्तर्गत प्रयुक्त अकादमिक वर्ष का तात्पर्य विषम व सम (odd & even) सेमेस्टर से हैं। विकल्प आधारित क्रेडिट प्रणाली (Choice Based Credit System) के अन्तर्गत विद्यार्थी निर्धारित कोर्स (course) यथा-कोर कोर्स, (core course) इलेक्टिव कोर्स (elective course), या नरम कौशल कोर्स (soft skill course) या माइनर कोर्स (minor course) में से चयन कर सकता है। प्रोग्राम घटक (programme component) में लिए गए "पेपर" (papers) कोर्स (course) कहलाते हैं, यह आवश्यक नहीं है कि सभी कोर्स का समान भार (weight) हो, यह अधिगम के उद्देश्यों व उसके परिणामों को परिभाषित करने वाला होना चाहिए। इसमें व्याख्यान, ट्यूटोरियल, प्रयोगशाला-कार्य, फील्ड वर्क, प्रोजेक्ट वर्क, आउट रीच, गतिविधियाँ, स्वप्रेरणा प्रशिक्षण, सेमिनार, मौखिक परीक्षा, टर्म पेपर, प्रदत्त कार्य, स्व-अध्ययन, प्रस्तुतीकरण या उपर्युक्त में से कुछ का संयोजन हो सकता है।

क्रेडिट आधारित सेमेस्टर प्रणाली में (Credit Based Semester System), विद्यार्थी को उपाधि, प्रमाण पत्र, डिप्लोमा प्राप्त करने हेतु निर्धारित क्रेडिट पूरे करने होंगे, क्रेडिट वह इकाई (unit) है, जिसके द्वारा कोर्स (paper) को मापा (measured) जाता है, यह प्रति सप्ताह घंटों (hours) की संख्या निर्धारित करता है, एक क्रेडिट, एक घंटे शिक्षण के बराबर (व्याख्यान या ट्यूटोरियल), या दो घंटे प्रायोगिक या फील्ड कार्य प्रति सप्ताह हैं, अतः यह प्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थी की उपस्थिति को दर्शाता है। ग्रेड प्वाइन्ट (grade-point), यह संख्यात्मक (numerical) वजन (weight) है जो 10 सूची पैमाने पर प्रत्येक अक्षर (letter) के ग्रेड के लिए आवंटित किया जाता है, जैसे- O,A+,A,B+,B,C,P,F, Ab के लिए ग्रेड प्वाइन्ट 10, 9, 8, 7, 6, 5, 4, 0, 0.। क्रेडिट प्वाइन्ट (credit point), यह ग्रेड प्वाइन्ट (grade point) व कोर्स के क्रेडिट का उत्पाद (product) है। ग्रेड-अक्षर (grade-letter), यह विद्यार्थी का कार्य निष्पादन सूचक या लक्षण (index of performance) है। प्रत्येक कोर्स के लिए उपर्युक्त वर्णित अक्षरों द्वारा प्रदर्शित करते हैं। संचयी ग्रेड प्वाइन्ट औसत (Cumulative Grade Point Average, CGPA) यह विद्यार्थी की कुल मिलाकर कार्य निष्पादन का आकलन है, सभी सेमेस्टर का है। यह विद्यार्थी द्वारा सभी सेमेस्टर के कोर्सेज (courses) में प्राप्त सभी क्रेडिट प्वाइन्ट (credit points) के योग व सभी सेमेस्टर के कोर्सेज (courses) के सम्पूर्ण क्रेडिट के योग (total) का अनुपात है। यह दो दशमलव स्थानों तक व्यक्त किया जाता है। उपाधि, प्रमाण पत्र या डिप्लोमा के लिए निर्धारित कार्यक्रम (programme) पूर्ण करने पर ही यह देय होंगे।

सेमेस्टर ग्रेड बिन्दु औसत (Semester Grade Point Average, SGPA), यह सेमेस्टर में विद्यार्थी द्वारा कार्य निष्पादन का आकलन है, यह विद्यार्थी द्वारा अर्जित, योग (total) क्रेडिट प्वाइन्ट हैं जो विद्यार्थी विभिन्न कोर्सेज के सेमेस्टर के लिए पंजीकृत है व सेमेस्टर के सम्पूर्ण कोर्स के क्रेडिट के योग का अनुपात है। प्रत्येक सेमेस्टर में करीब 15-18 सप्ताह का अकादमिक कार्य होगा जो 90 वास्तविक शिक्षण दिवसों के बराबर होगा। विषम सेमेस्टर, जुलाई से दिसम्बर व सम सेमेस्टर जनवरी से जून में निर्धारित किया जाना चाहिए। प्रत्येक सेमेस्टर के बाद पंजीकृत विद्यार्थियों को ग्रेड प्रमाण पत्र (grade certificate) या ग्रेड कार्ड (grade card) या ट्रांसक्रिप्ट कार्ड (transcript card) प्रदान किया जाएगा। इस प्रमाण पत्र में कोर्स की जानकारी यथा-कोड, टाइटल, क्रेडिट नम्बर, ग्रेड के साथ सेमेस्टर ग्रेड प्वाइन्ट औसत (SGPA) व संचयी ग्रेड प्वाइन्ट औसत (CGPA), जिन्हें सेमेस्टर में अर्जित किये हैं, अंकित होगा।

सेमेस्टर प्रणाली में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है, साथ ही अधिगम में क्षैतिज (horizontal) व ऊर्ध्व (vertical) गतिशीलता बढ़ती है। क्रेडिट आधारित सेमेस्टर प्रणाली में पाठ्यचर्या निर्धारण में खुलापन आ जाता है, साथ ही कोर्स के आधार व शिक्षण समय (teaching hours) के आधार पर क्रेडिट निर्धारित किये जा सकते हैं। इस प्रणाली में विद्यार्थी अतिरिक्त विषय भी पढ़ सकता है व निर्धारित क्रेडिट से अधिक भी अर्जित कर सकता है। यह अधिगम की एक अन्तरविषयी (interdisciplinary) व्यवस्था है। कोर्स प्रोग्राम तीन प्रकार के हो सकते हैं, कोर (core), वैकल्पिक (elective) व फाउन्डेशन (foundation), उच्च शिक्षण संस्थानों में परीक्षा व मूल्यांकन के विभिन्न प्रकार हैं। जैसे सत्रवार (sessional), मध्यावधि (mid-term) व अंत सेमेस्टर (end- semester) परीक्षाओं का आयोजन आदि, शिक्षण

संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ग्रेड, ग्रेड प्वाइन्ट, अक्षर ग्रेड आदि में विषमताएँ पाई जाती हैं, इसलिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने एक सामान्य प्रक्रिया निर्धारित की है।

सतत् मूल्यांकन व समयानुकूल, पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्चा से ही विद्यार्थी की मेधा परिष्कृत होती रहती है इसी से विचारशीलता, रचनात्मक, सृजनात्मक, राष्ट्र केन्द्री, समाज केन्द्री व राष्ट्रीयता की भावना का, उदय होकर एक शिक्षित-दीक्षित, विचारवान, नागरिक का निर्माण होता है। अनवरत अभ्यास से जड़ भी चेतन हो जाता है जैसा कि रहीम जी ने कहा है -

''करत करत अभ्यास ते,
जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते,
सिल पर परत निशान।।''

अत: शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा व मूल्यांकन व अभ्यास का विशेष महत्त्व है, यह एक ऐसा उपकरण है जो विद्यार्थी के अकादमिक मापदण्डों के विश्लेषण के साथ यह भी प्रमाणित करता है कि विद्यार्थी शैक्षिक मानकों पर खरा उतरता है या नहीं। यह विद्यार्थी को निष्पादन (performance) का निष्पक्ष संकेत भी देता है। सतत् मूल्यांकन से विद्यार्थी नियमित, पठन-पाठन, करता है स्टेज पर आकर सभी शिक्षकों के सामने अपनी पावर प्वाइन्ट पर प्रस्तुति देने से उसमें आत्मबल, बढ़ता है। स्वाभिमान व आधुनिक अधिगम प्रणाली के प्रति अभिरुचि बढ़ती है, लघुशोध, के द्वारा विद्यार्थी में वैज्ञानिक अभिरुचि विकसित होती है। वैज्ञानिक अवधारणाओं का वह आकलन कर वह अपनी मेधा के द्वारा उसमें अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों व सामाजिक सरोकारों का समावेश कर विज्ञान व मानविकी के सकारात्मक उपयोग की ओर अग्रसर होता है। सामाजिक विस्तार (social outreach) के द्वारा विद्यार्थी को समाज में होने वाली सम सामयिक घटनाओं की जानकारी हो जाती है। समाज

के ताने-बाने का अध्ययन कर वह समाज के मनोविज्ञान को समझ सकता है व समस्याओं का समाधान देकर, अपने समाज केन्द्रित दायित्व का निर्वहन कर सकता है। समाज के समग्र विकास में विद्यार्थी अपनी भूमिका निभाकर एक जागरूक नागरिक के कर्त्तव्य को निभाता है। जैसा कि भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में कहा है कि ''इस परिवर्तनशील संसार में व्यक्ति आते हैं व चले जाते हैं, परन्तु सार्थक जीवन उसी का है जो समाज व राष्ट्र के प्रति समर्पण-भाव से कार्यों का निष्पादन करता है।''

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मूल्यांकन में निष्पक्षता हेतु नियंत्रण व सन्तुलन (check and balance) को आधार बनाया है जिससे विश्वविद्यालयों में परीक्षा प्रक्रिया व मूल्यांकन में पारदर्शिता हो। सेमेस्टर के कोर-विषयों की सैद्धांतिक परीक्षा का प्रश्न-पत्र निर्धारण व मूल्यांकन, विश्वविद्यालय के बाहर के शिक्षकों से कराया जाना चाहिए जिसे सक्षम अधिकारी नियुक्त करें। इसी प्रकार कोर-विषयों की प्रायोगिक परीक्षा में 50 प्रतिशत परीक्षक विश्वविद्यालय परिसर से बाहर के होने चाहिए। प्रोजेक्ट, लघुशोध, सामाजिक विस्तार रिपोर्ट, थीसिस आदि का मूल्यांकन आंतरिक व बाह्य परीक्षकों के द्वारा होना चाहिए। अत: विश्वविद्यालय आयोग द्वारा प्रस्तावित विकल्प आधारित क्रेडिट व्यवस्था में विद्यार्थी विषय का विस्तृत अध्ययन करता है, कुछ विषय स्वयं चयन करता है। साथ ही विषय से सम्बन्धित अन्य विषयों की जानकारी भी प्राप्त करता है। क्रेडिट के आधार पर ही विद्यार्थी का समग्र मूल्यांकन होता है उसे प्रतिदिन निश्चित अवधि तक शिक्षा अध्ययन करना होगा और नियमित मूल्यांकन ही उसके क्रेडिट का निर्धारण करेगा। राज्य सरकारों का भी दायित्व है कि वे सभी उच्च शिक्षण संस्थान में आधारभूत संरचना, व कार्यस्थल वातावरण, संकाय व कर्मचारियों की उपलब्धता सुनिश्चित करें, तभी उत्तम परिणाम साकार होंगे। अत: उपर्युक्त परीक्षा व्यवस्था व मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होगा यदि सभी स्तरों पर पूरी ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, लगन व समर्पित शिक्षक के रूप में सभी अपनी भूमिका का निर्वहन करें तो भारत विश्व की ख्याति प्राप्त संस्थाओं से आगे बढ़ेगा व सभी का देश के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान होगा, इसी से भारत का विकास सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठतम होगा। ❑

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छ.ग.)

आधुनिक परीक्षा पद्धति सूचनाओं के अधिग्रहण तक सीमित है अतः सीखने के बौद्धिक एवं भावनात्मक पक्षों में सन्तुलन नहीं होता। विद्यार्थी की शिक्षण में सक्रियता कम हो जाती है। वह सीखने की प्रक्रिया में पूरी तरह प्रतिभागिता नहीं करता। रोजगारोन्मुखी एवं व्यवसायिक शिक्षा का प्रसार विश्व व्यापार में लाभप्रद स्थिति के लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को बढ़ावा देता है। इससे विवरण, विस्तार, व्याख्यान व अन्वेषण जैसे शिक्षण को प्रभावी बनाने वाली क्रियाविधियाँ समाप्त हो जाती है। विज्ञान तथा गणित जैसे विषय में जिज्ञासाओं तथा समस्याओं के समाधान नहीं प्राप्त होते। तर्क वितर्क की प्रक्रिया विकसित नहीं होती। अतः छात्र आधारभूत ज्ञान से भी वंचित रह जाते हैं।

मूल्यांकन के स्थान पर समग्र विकास का लक्ष्य

❑ **डॉ. रेखा भट्ट**

प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली मानव के निर्माण की परिकल्पना पर आधारित थी। शिक्षा का उद्देश्य मानव जीवन का विकास था। आश्रमों एवं गुरुकुलों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी, सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में अर्थ की प्रधानता नहीं थी। अतः शैक्षिक उपलब्धियों के प्रदर्शन के रूप में परीक्षा प्रणाली की तथा उपाधियों की आवश्यकता नहीं होती थी। गुरु द्वारा वाचिक उपाधि प्रदान की जाती थी और शिक्षार्थियों द्वारा सामाजिक दायित्वों का वहन एवं उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा ही प्रमाण थी। वेदों की शिक्षा के समावर्तन पर गुरु द्वारा शिष्यों को दिये गये इस अन्तिम उपदेश से स्पष्ट होता है कि शिक्षार्थी का मूल्यांकन आचार्य स्वयं करते थे। इस तथ्य का उल्लेख तैतरीय उपनिषद् के निम्न श्लोक में किया गया–

सत्यं वद, धर्म चर। स्वाध्यायान् मा प्रमदः।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।
आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।
यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि।
यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि।
नो इतराणि। ये के चास्तत्श्रेंयासो ब्राह्मणाः।
तेषां त्वयाऽऽसनेने प्रश्वसितव्यम्
एष आदेशः। एष उपदेशः एतदनुशासननम्।
एवमुपासितव्यम्।

अभिप्राय है कि– हे शिष्यों, सत्य बोलें, अपने धर्म का पालना करें अपने अध्ययन में कभी निष्क्रिय न हो। माँ को देवी, पिता को गुरु तथा अतिथि को देवता मानें। कार्य सदैव शास्त्रों और समाज की सम्मति से करें, अच्छे आचरण अपनाएँ, प्रत्येक शिक्षक का सम्मान करें। यही अन्तिम आदेश है, यही शिक्षण है। आगे बढ़ो और इसी के अनुसार जीयो।''

गुरु द्वारा उपनयन संस्कार से लेकर समावर्तन संस्कार तक सिखाई गई विद्या का यही मूल्यांकन होता था। पूरे अध्ययन काल में गुरु के कठोर नियमों में निरीक्षण अभ्यास व सतत् परीक्षण के पश्चात् शिक्षा पूर्ण मानी जाती थी। गुरुकुल में प्रवेश की पात्रता के कठिन नियम थे जो विद्यार्थी की प्रवृति क्षमता, स्वभाव तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित होते थे। शिष्य को अपना गुरु चुनने की पूर्ण स्वत्रंतता होती थी। गुरु का स्थान सर्वोच्च था। वे पूर्ण निष्ठा से विद्यार्थी में त्वरित सीखने की क्षमता, व्यवहारिक दक्षता तथा विद्या के सामाजिक उपयोग सिखाते हुए शिष्य का व्यक्तित्व निर्माण करते थे। मौखिक रूप से पाठों को कण्ठस्थ कराया

जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षण किसी विदेशी भाषा पर निर्भर नहीं था मातृभाषा संस्कृत और सामान्य जनता द्वारा भी प्रयोग में लाई जाती थी। मातृभाषा में शिक्षण होने से छात्र स्वयं की चिन्तन क्षमता के साथ नवीन सृजन एवं समस्याओं के निराकरण करने के योग्य बनता था।

भारतीय विश्वविद्यालयों के रूप में विख्यात तक्षशिला व नालंदा के शिक्षा केन्द्रों में दस हजार विद्यार्थी एवं तीन हजार शिक्षकों के एक साथ विद्या अध्ययन का वर्णन मिलता है। विक्रम शिला, वल्लभी, नदिया, ओदन्तपुरी आदि अन्य विश्वविद्यालय थे जहाँ कई विषयों का सर्वश्रेष्ठ अध्ययन करवाया जाता था। विश्वविद्यालयी उच्च शिक्षा में कई विषय थे- दर्शन, तर्कशास्त्र, ज्योतिष, नक्षत्र, औषधि, गणित, रसायन, वनस्पति, जीवन आदि। विद्यार्थी को अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार विषय चुनने की स्वतन्त्रता थी। शिक्षार्थियों के लिए किसी प्रकार की परीक्षा व्यवस्था नहीं थी किन्तु सभी छात्र पूरी दिनचर्या में सम्पूर्ण सजगता तत्परता व समर्पण से शिक्षा प्राप्त करते थे। नियमित रूप से शिष्यों की कमियों में सुधार एवं गुणों को अधिक निखारने व योग्य बनाने की प्रक्रिया होती थी। इस प्रकार दक्षता प्राप्त विद्यार्थी को ही समाज के कल्याण के लिए उपयुक्त माना जाता था। यही कारण था कि प्राचीन वैदिक सभ्यता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक रूप से विकसित थी।

देश को कुरीतियों और अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाने तथा प्राचीन वैदिक गुरुकुल शिक्षा पद्धति को आधुनिक बनाने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई बुनियादी शिक्षा पद्धति को हम आज भी अपने शिक्षण तंत्र से अलग नहीं कर सके हैं। वर्तमान शिक्षण संस्थाएँ परीक्षाओं द्वारा विद्यार्थी में क्या मापना चाहती है और वास्तव में क्या मापा जा रहा है-यह अन्तर भी स्पष्ट नहीं कर सकी है। प्रत्येक परीक्षा पद्धति में विद्यार्थी की स्मरण शक्ति के आधार पर जानकारियों के पुनर्लेखन की क्षमता का मापन करती है। विद्यार्थी की तार्किक एवं वैचारिक शक्ति, नवाचार के प्रयोग, शारीरिक व बौद्धिक क्षमता का मापन संभव नहीं होता। शिक्षा के महत्त्वपूर्ण परिणामों जैसे व्यक्तित्व विकास, आत्मविश्वास, भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक विकास का मापन तो वर्तमान परीक्षा पद्धति से संभव नहीं है।

आधुनिक शिक्षा प्राप्ति अर्थ प्रधान होने के कारण, वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में शैक्षिक उपलब्धियों के प्रदर्शन का एक ही विकल्प है- परीक्षा। यह वर्ष पर्यन्त चलने वाली शैक्षिक गतिविधियों की सफलता का मापदण्ड भी है। शैक्षणिक वातावरण, व्यवसायिकता से जुड़ा होने के कारण पर्याप्त रूप से साक्ष्यों पर आधारित हैं तथा शिक्षण के परिणामों द्वारा संचालित होता है। शिक्षा का मात्रात्मक मूल्यांकन संभव है। अत: यह सैद्धान्तिक अधिक है। गुणात्मक मूल्यांकन को समाहित कर इसे व्यावहारिक बनाये जाने की आवश्यकता है।

शिक्षा के गुणात्मक मूल्यांकन में विद्यार्थी के ज्ञान, कौशल, रचनात्मकता एवं व्यक्तित्व निर्माण जैसे सभी पहलुओं का मूल्यांकन समाहित है। वर्तमान शिक्षण के परिणाम प्रभावी नहीं हो पाते क्योंकि विद्यार्थी को दिये गये शिक्षण प्रशिक्षण तथा विद्यार्थी द्वारा ग्रहण किये गये आधारभूत शिक्षण में सामंजस्य नहीं होता। विद्यार्थी के सैद्धान्तिक ज्ञान तथा व्यवहारिक कौशल के बीच व्यापक अन्तर होता है अत: दोनों क्षमताओं का सही आकलन संभव नहीं होता।

अंकों द्वारा या ग्रेड द्वारा सीखे गये कौशल एवं ज्ञान का आकलन होनहार विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करता है, यह प्रतिद्वन्द्विता एवं नकारात्मकता को विकसित

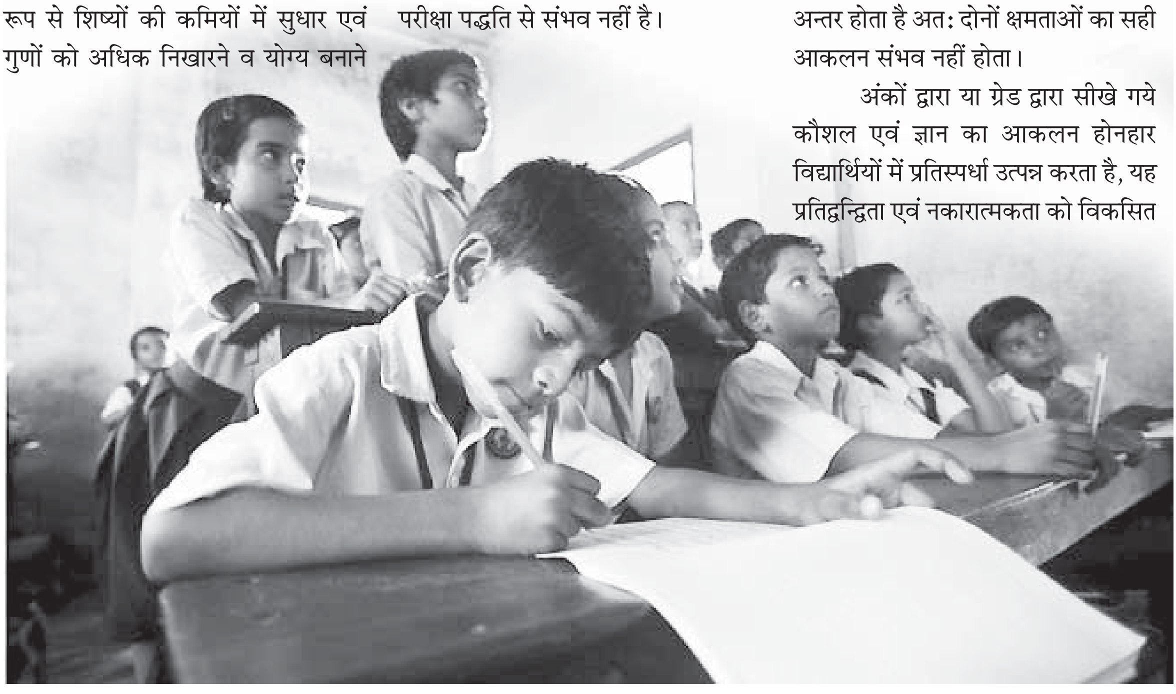

करती है। वहीं दूसरी और सामान्य एवं कम प्रतिभाशाली विद्यार्थियों में उत्तीर्ण होने का भय उत्पन्न करता है। इस प्रकार विद्यार्थी के शिक्षा द्वारा सीखने के उद्देश्य समाप्त हो जाते हैं। उद्देश्य की प्रासंगिकता से शिक्षा की उपयोगिता बढ़ती है। सम्पूर्ण शिक्षण काल में विद्यार्थी की रुचि के विषय नहीं पढ़ाये जाते हैं। यह विषय विद्यार्थी की योग्यता के अनुरूप भी नहीं होते हैं। ऐसे शिक्षण के लिए सकारात्मक वातावरण बनाने के प्रयास भी निरन्तर असफल रहे हैं। शिक्षण को आकर्षक बनाने के लिये आधुनिकतम साधनों का उपयोग अथवा शिक्षण को मनोरंजक एवं सरल तरीके से क्रियात्मक कार्यों में रूपान्तरण विद्यार्थी के सीखने की गति को बढ़ायेगा और शिक्षण काल के पश्चात् भी उन्हें स्मरण रख सकेगा।

आधुनिक परीक्षा पद्धति सूचनाओं के अधिग्रहण तक सीमित है अत: सीखने के बौद्धिक एवं भावनात्मक पक्षों में सन्तुलन नहीं होता। विद्यार्थी की शिक्षण में सक्रियता कम हो जाती है। वह सीखने की प्रक्रिया में पूरी तरह प्रतिभागिता नहीं करता। रोजगारोन्मुखी एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार विश्व व्यापार में लाभप्रद स्थिति के लिये वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को बढ़ावा देता है। इससे विवरण, विस्तार, व्याख्यान व अन्वेषण जैसे शिक्षण को प्रभावी बनाने वाली क्रियाविधियाँ समाप्त हो जाती है। विज्ञान तथा गणित जैसे विषय में जिज्ञासाओं तथा समस्याओं के समाधान नहीं प्राप्त होते। तर्क वितर्क की प्रक्रिया विकसित नहीं होती। अत: छात्र आधारभूत ज्ञान से भी वंचित रह जाते हैं। उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित नहीं होता। नये आयाम खोजने, नये सिद्धान्त विकसित करने या नये प्रयोग करने के अवसर वर्तमान परीक्षा प्रणाली में उपलब्ध नहीं होते हैं।

निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित परम्परागत परीक्षा प्रणाली में गत वर्षों के अनुभवों का लाभ लेने तथा रचनात्मकता विकसित करने के अवसर नहीं प्राप्त होते हैं। पाठ्यपुस्तकों में नई जानकारियाँ नहीं जुड़ती। कई परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने पर भी सांस्कृतिक व ऐतिहासिक तथ्यों, कानूनी पहलुओं एवं मातृभाषा से अवगत नहीं हो पाते।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य देखकर, सुनकर एवं अभ्यास द्वारा प्रभावी तरीके से सीखता है। आधुनिक साधन, डिजीटल संचार, नेटवर्किंग, वीडिओ कोन्फ्रेंसिंग जैसे माध्यम शिक्षण में उपयोगी सिद्ध होंगे। ई-शिक्षा के साथ शिक्षा का प्रसार होगा और परीक्षा पद्धति में भी आधुनिक परिवर्तन करने आवश्यक होंगे। परीक्षा की दृष्टि से शिक्षा का ढाँचा विकसित होता है अत: परीक्षा पद्धति में विद्यार्थी के गहन एवं विस्तृत ज्ञान की सतत् एवं नियमित प्रगति सुनिश्चित करे किन्तु उन्हें अंकों अथवा ग्रेडों में रिपोर्ट करने की अपेक्षा सीखे गये कार्यों का सामाजिक व अन्य क्षेत्रों में आर्थिक क्रियान्वयन, लाभ, उपयोगिता व सहयोग से जोड़ा जाये।

यदि परीक्षा जाँच एवं मूल्यांकन की तनावपूर्ण प्रक्रिया की अपेक्षा विद्यार्थी के लिये सीखने की दक्षता का लक्ष्य निर्धारित करें। निरन्तर अभ्यास को प्रेरित करें। नए प्रयोग करने की स्वतंत्रता दें। स्वत: कार्य योजना प्रेक्षण तथा समीक्षा के अवसर प्रदान करें। तभी शिक्षण की समूची प्रक्रिया कॅरियर तथा सामाजिक लब्धता के साथ प्रासंगिक होगी। जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में खेत एवं बड़े शहरों में व्यावसायिक व औद्योगिक प्रतिष्ठान सार्थक प्रयोगशाला एवं कार्यशाला प्रशिक्षण सिद्ध हो सकते हैं। इससे भारत में सर्वाधिक रूप से प्रचलित परम्परागत एवं सामुदायिक व्यवसायों एवं लघु उद्यमिता को बढ़ावा मिलेगा। विद्यार्थी भविष्य में वैकल्पिक कॅरियर का स्वयं चुनाव करने की स्थिति में होंगे। इस तरह शिक्षा उत्पादकता एवं स्थानीय आवश्यकता से जुड़ेगी तथा विद्यार्थी के लिये मूल्यांकन की अपेक्षा प्रतिभा प्रकट करने का उद्देश्य विद्यार्थी को स्वावलम्बी बनायेगा।

विद्यार्थी के विविध पक्षों का सतत् निरीक्षण हो श्रम एवं शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करें तथा कार्य सम्पादन को महत्त्व दिया जाये। इससे ग्रेडिंग तथा अंकों के निर्धारण की आवश्यकता नहीं रहेगी। विद्यार्थी के बुद्धि एवं विषय सम्बन्धी विकास का मुख्य लक्ष्य रखते हुए सम्प्राप्ति (Achievements) का परीक्षण ज्ञान विज्ञान में कौशल परीक्षण, व्याख्यात्मक विषयों के वर्णन, कल्पनाशक्ति व रोचकता विकसित करने के लिए कहानी कविता, लेखन, कला संस्कृति के ज्ञान हेतु प्रदर्शनी एवं क्रियात्मक गतिविधियाँ सहायक होगीं। सामूहिक गतिविधियों में स्वच्छता, व्यवस्था, सेवा, परोपकार व समाजोत्थान के कार्यों में भागीदारी व तत्परता से विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

वर्तमान CCE प्रणाली में विद्यार्थी के विविध आयामों के सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के लिये प्रत्येक माह विद्यार्थी को परीक्षाओं की अनावश्यक प्रक्रियाओं से गुजारा जाता है। किन्तु 10 वर्षों में सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हो सके हैं।

मैकाले द्वारा तैयार किये गये शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे में परिवर्तनों और उसके भारतीयकरण के कई प्रयासों, आयोगों, बोर्डों और संस्थाओं के गठन के बावजूद भी हम वास्तव में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का मूल भारतीय स्वरूप प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। यदि हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा घोषित वुड घोषणा पत्र-1854 में दी गई शिक्षण एवं मूल्यांकन विधियों की सिफारिशों से भारतीय परीक्षा पद्धति को मुक्त कर सकेंगे तभी हम शिक्षा के प्राचीन लोक कल्याणकारी स्वरूप को पुन: स्थापित कर सकेंगे। शिक्षा द्वारा ही भारतीय सभ्यता व संस्कृति के साथ परम्परागत उद्यमिता के विकास द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था उन्नत हो सकेगी। ❑

(व्याख्याता, रसायन विज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

परीक्षा सुधार : नहीं निकला सार

कहने को तो देश में प्रजातन्त्र है मगर प्रशासनिक ढ़ाँचा वही अंग्रेजों वाला है। शिक्षा की कमी व भ्रष्टाचार के कारण न हम प्रजातन्त्र का लाभ उठा पा रहे हैं और न ही अधिनायकवाद का। इसी कारण शिक्षा हो या परीक्षा, सुधार के नाम पर हम लीपा पोती ही करते रहे हैं। दिखने लिए शिक्षाबोर्ड व विश्वविद्यालय स्वायत्त लगते हैं मगर यह भ्रम का पर्दा मात्र है। वस्तुस्थिति तो यह कि शिक्षा प्रशासन राजनैतिक इशारों पर नाचने को मजबूर हैं। वोट-बैंक के दवाब में राजनैतिक नेतृत्व कोई बड़ा परिवर्तन करने का साहस नहीं कर पाता। सब कुछ तदर्थवाद के अनुरूप चलता रहा है। क्या पढ़ाना?, कितना पढ़ाना?, किसे पढ़ाना? आदि प्रश्न प्रजातन्त्र में गौण हैं।

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

यह सत्य है कि शिक्षा और परीक्षा का चोली-दामन वाला साथ है मगर परीक्षा ने जो बीभत्स रूप ग्रहण किया है उसके विरोधी स्वर, देश स्वतन्त्र होने के पूर्व से ही गूँजने लगे थे। यही कारण था कि देश के पहले शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन आयोग) को कहना पड़ा कि शिक्षा में कोई एक सुधार सबसे पहले करने की बात हो तो वह परीक्षा में सुधार होगा। हैरानी की बात यह कि 1948-49 से प्रारम्भ हुए परीक्षा सुधार के हमारे प्रयास, करोड़ों रुपए व विशाल श्रमशक्ति खर्च करने के बाद भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं। परीक्षा अभी भी हजारों बच्चों का भक्षण प्रतिवर्ष कर रही है। परीक्षा द्वारा दिए तनाव को सहन नहीं कर आत्महत्या करने वाले बच्चों की मौत पर जबानी संवेदना प्रकट करने के अतिरिक्त हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।

परीक्षा का इतिहास

परीक्षा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना पुराना शिक्षा का। परीक्षा से ही यह जाना जा सकता है कि शिष्य ने कितना सीखा कितना नहीं। हमारे देश में गुरुकुल प्रणाली में भी परीक्षा होती थी। गुरुकुल में परीक्षा मौखिक या प्रायोगिक होती थी तथा प्रत्येक शिष्य की अलग अलग होती थी। शिष्य द्वारा ज्ञान का एक चरण पूरा कर लेने पर गुरु उसे अगले चरण का ज्ञान देता था, कमी पाये जाने पर अभ्यास कराया जाता था।

लिखित परीक्षा का प्रारम्भ सबसे पहले चीन में 606 ईस्वी में हुआ बताया जाता है। चीन के राजा ने राजकीय परीक्षा तन्त्र का गठन कर राजतन्त्र के लिए योग्य कर्मचारियों को चुने जाने की प्रथा प्रारम्भ की थी। विद्यालयों में प्रतियोगी परीक्षाओं का प्रारम्भ यूरोप के देशों में 16 वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। 19 वीं शताब्दी में विश्वविद्यालयों की स्थापना होने लगी तो परीक्षा वहां पहुँच गई। भारत में 1847 में परीक्षा प्रणाली लागू कर बिना औचित्य के 33 प्रतिशत उत्तीर्णांक तय कर दिए गए जो आज भी है। 33 प्रतिशत पर उत्तीर्णांक का औचित्य समझ से परे है क्योंकि ज्ञान तो पूरा होने पर उपयोगी हो सकता है।

किसी अच्छे शिक्षातन्त्र में परीक्षा का उपयोग शिक्षातन्त्र के उपकरणों की प्रभावशीलता को जाँचने में होता है। परीक्षा परिणाम किसी को तनाव नहीं देकर सुधार की राह बताते हैं। वर्तमान परीक्षा में ऐसा नहीं है। शिक्षा चाहे नहीं हो परीक्षा तो होती ही है। परिणाम देना विद्यार्थी का काम है, वह जाहे जैसे दे। मेहनत या नकल करके दे। सिफारिश लगवा कर दे या गुण्डागर्दी से दे क्योंकि भविष्य में परीक्षाजनित प्रमाणपत्र को पूछा जाएगा,

ज्ञान कहाँ काम आएगा।

नाकाम शिक्षातन्त्र

सही में पूछा जाये तो कमी शिक्षा तन्त्र में है और हम दोष परीक्षा को देते रहे हैं। जब दर्द पेट में हो और इलाज सिरदर्द का किया जाये तो सफलता कैसे मिल सकती है? देश स्वतन्त्र होने के बाद शिक्षा का उद्देश्य तो देश के लिए योग्य नागरिक विकसित करना कर दिया मगर शिक्षा व्यवस्था वही मैकाले वाली रखी। मैकाले शिक्षा प्रणाली का एक मात्र उद्देश्य राजतन्त्र को चलाने के लिए कर्मचारी व अधिकारी छाँटना था। आज भी हम वही कर रहे हैं। हमारा सम्पूर्ण शिक्षातन्त्र मात्र कुछ चयन परीक्षाओं का गुलाम बना हुआ है। मेरी दृष्टि में ये चयन परीक्षा नहीं होकर दुत्कार परीक्षा होती है। यदि 10,000 परीक्षार्थी बैठे तो चयन तो मात्र 50 का होता है और 9,950 को अयोग्य घोषित किया जाता है। हर कोई अपने बच्चे को डॉक्टर, इंजीनियर, वाणिज्य प्रबन्धक या प्रशासनिक अधिकारी बनाना चाह रहा है और प्रतियोगी परीक्षा की चाबुक से हम उन्हें दुत्कार रहे हैं। यही दुत्कार बच्चों को अकेला कर निराशा के गर्त में डाल देती है। बच्चों की व्यक्तिगत विभिन्नता का कोई ध्यान इन परीक्षाओं में नहीं होता, विद्यालय कारखाने बन थोक उत्पादन में लगे हैं। इन परीक्षाओं का चरित्र निर्माण से कोई लेना देना नहीं है। भारतीय सोच में बिना चरित्र के ज्ञान को हानिकारक माना जाता रहा है। परिणाम सामने हैं। आज पढ़े लिखे लोग ही समाज को अधिक हानि पहुँचा रहे हैं।

शिक्षा गौण-प्रशासन मुख्य

कहने को तो देश में प्रजातन्त्र है मगर प्रशासनिक ढ़ाँचा वही अंग्रेजों वाला है। शिक्षा की कमी व भ्रष्टाचार के कारण न हम प्रजातन्त्र का लाभ उठा पा रहे हैं और न ही अधिनायकवाद का। इसी कारण शिक्षा हो या परीक्षा, सुधार के नाम पर हम लीपा पोती ही करते रहे हैं। दिखने लिए शिक्षाबोर्ड व विश्वविद्यालय स्वायत्त लगते हैं मगर यह

भ्रम का पर्दा मात्र है। वस्तुस्थिति तो यह कि शिक्षा प्रशासन राजनैतिक इशारों पर नाचने को मजबूर हैं। वोट-बैंक के दवाब में राजनैतिक नेतृत्व कोई बड़ा परिवर्तन करने का साहस नहीं कर पाता। सब कुछ तदर्थवाद के अनुरूप चलता रहा है। क्या पढ़ाना?, कितना पढ़ाना?, किसे पढ़ाना? आदि प्रश्न प्रजातन्त्र में गौण हैं। व्यक्तिगत भिन्नता को नकार कर सभी से एक सी अपेक्षा की जाती है। पाठ्यपुस्तकें हो या शिक्षा प्रणाली कहीं भी गहरी सोच नहीं पनप पाई, सभी कुछ तदर्थ है फिर भी विद्यार्थी के अंक कम आने का अर्थ यही माना जाता है कि वे पढ़ते नहीं है या शिक्षक पढ़ाते नहीं है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों या शिक्षण विधि को कोई दोष नहीं देता। दौलत सिंह कोठारी हो या प्रोफेसर यशपाल सबके सुझाव बस्ते में बाँध कर रख दिए गए।

विरोध में रह कर एक दल जिन बातों की आलोचना करता रहता है, सत्ता में आते ही वह उनका समर्थन करने लगता है। यही कारण है कि बदलाव के बड़े-बड़े नारों के बाद भी सब कुछ वैसा ही है जैसा अंग्रेज छोड़ कर गए थे। सही मूल्यांकन करें तो स्थिति बिगड़ी है सुधरी नहीं है।

इच्छाशक्ति तो दिखानी होगी

भारत सहित सम्पूर्ण विश्व आज अनेक विषमताओं के दौर से गुजर रहा है। भारत के आर्थिक शक्ति बनने से हमारी समस्याएँ हल नहीं होगी। देश में बढ़ती आर्थिक विषमता कभी भी हमारी शान्ति को पलीता लगा सकती है। संकीर्ण होता राजनैतिक नेतृत्व ऐसे किसी संकट को कैसे निपट पायेगा कहना कठिन है। ऐसे संकट से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर योग्य लोगों को उचित जिम्मेदारियाँ सौंपी जाये। पार्टी केडर को मजबूत करने के लिए अयोग्य लोगों को महत्त्वपूर्ण पदों पर बैठाने की प्रवृति को छोड़ कर सही मायने में विद्वान लोगों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए मूर्ख मित्र से विद्वान शत्रु अधिक श्रेयकर होता है।

राजस्थान सरकार ने पिछले माह एक आदेश निकला है कि 70 प्रतिशत से कम परीक्षा परिणाम देने वाले शिक्षकों के विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी। अन्य सरकारों का सोच भी परीक्षा को महिमामण्डित करने का ही रहता है क्योंकि शिक्षा व्यवस्था को मजबूत करने की तुलना में परीक्षा को मजबूत करना बहुत ही आसान कार्य है। इन सम्पूर्ण घटनाक्रमों से लगता है हम एक बार फिर 1948 की ओर बढ़ रहे हैं। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

परीक्षा, मूल्यांकन और चुनौतियाँ

वर्ष के अंत में होने वाली परीक्षा के नतीजों के आधार पर किसी बच्चे के व्यक्तित्व का सही आकलन नहीं होता है। रटंत तरीके से परीक्षा पास कर ली जाती है। इससे न तो बच्चे की रचनात्मक क्षमता का पता लग पाता है और न ही बच्चे के व्यावहारिक ज्ञान की सही परख हो पाती है। शिक्षा एक एकीकृत व संपूर्ण प्रक्रिया है। पढ़ाई को केवल कक्षा व किताबों तक सीमित रखना तो शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्यों के विपरीत है। इसलिए बच्चों को स्कूल में बुनियादी ढ़ाँचा, सुविधाएँ व लचीलेपन के साथ इनपुट्स इस तरह से मिलने चाहिए कि उनसे बच्चे के शैक्षिक, बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास में मदद मिले। मूल्यांकन पढ़ाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इस तरह प्रभावी पठन पाठन और प्रभावी मूल्यांकन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

❑ **बजरंगी सिंह**

आज हमारे समक्ष पारंपरिक परीक्षा प्रणाली और मूल्यांकन को बदलने की नयी चुनौती उभरकर सामने आई है। सतत एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति को विद्यालयों में लागू करते समय विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिगम एक सतत प्रक्रिया है। मूल्यांकन, अध्यापन एवं अधिगम की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है इसलिए सतत् सम्यक मूल्यांकन सीसीई में मूलरूप से विद्यार्थी के ज्ञान की परीक्षा के स्थान पर उसके अधिगम की प्रक्रिया को मूल्यांकन के लिए चुना जाता है।

इस तरह की संकल्पना ने रचनात्मक मूल्यांकन की भूमिका को और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया। यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि विद्यालय पहले से ही सतत् एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति को अपनाएँ हुए हैं। विद्यालयों में कक्षा एक से आठ तक रचनात्मक मूल्यांकन प्रक्रिया को कई वर्षों से क्रियान्वित किया हुआ है परन्तु उन्होंने इस आकलन को अधिकतर परीक्षण के रूप में प्रयोग किया है, ज्ञान समृद्धि के लिए नहीं। इसी कारण संबंधित व्यक्ति रचनात्मक मूल्यांकन के उपकरणों और प्रक्रिया को प्रकृति से संकलित मूल्यांकन के अनुसार मूल्यांकित करते हैं। जैसा कि यह प्रक्रिया उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का किस प्रकार मूल्यांकन करने में सहायता करती है। यह हमें रचनात्मक मूल्यांकन को सशक्त बनाने की आवश्यकता की ओर ले जाता है। क्योंकि हमारा समग्र उद्देश्य रचनात्मक मूल्यांकन के द्वारा एकत्रित सूचनाओं के आधार पर अध्यापन अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाकर अधिगम को सुविधाजनक बनाना है। इस प्रकार रचनात्मक मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया का वह अभिन्न अंग है, जो विद्यार्थियों की सहभागिता पर बल देता है। शोध द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जब विद्यार्थी सहभागिता करते हैं। और स्वयं अपने काम के स्वामित्व को संभालते हैं, तो अधिगम के प्रति उनकी जिज्ञासा और बढ़ जाती है। दूसरी ओर संकलित मूल्यांकन सार्वजनिक जीवन में उपलब्धियों की एक पहचान बनाता है और हम सभी के लिए संकलित मूल्यांकन के उपकरणों के लिए प्रभावशाली रचनात्मक मूल्यांकन के उपकरण तैयार कर पाना एक कठिन चुनौती है। शिक्षा का लक्ष्य बच्चों को समाज के लिए उत्तरदायी, उत्पादक और उपयोगी सदस्य बनने की क्षमता प्रदान करता है। विद्यालय में छात्रों के लिए सीखने के अनुभवों और सृजित अवसरों के ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण के माध्यम से निर्मित की जाती है। कक्षाकक्ष में छात्र अपने अनुभवों का विश्लेषण और मूल्यांकन करने, अभिव्यक्त करने, प्रश्न करने खोजबीन करने और स्वतंत्र रूप से सीखने का

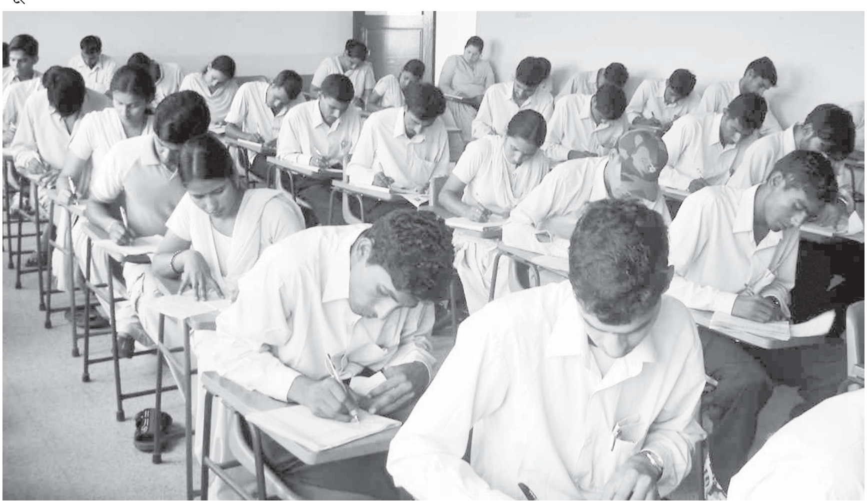

कार्य कर सकेंगे। साथ ही साथ शिक्षा का लाभ समाज की वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के दर्शाता है और दूसरे चिरस्थाई मूल्यों और मानवीय आदर्शों को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार संकल्पनात्मक विभाग की प्रक्रिया निर्धारित संदर्भों की गहराई तक ले जाने, समृद्ध बनाने तथा नए आयामों को अर्जित करने की निरंतर प्रक्रिया है। यूपी जैसे बोर्ड में भी सतत् समग्र मूल्यांकन प्रक्रिया को पूर्ण रूप से मूल्यांकन प्रक्रिया लागू की जाए। वर्ष के अंत में होने वाली परीक्षा के नतीजों के आधार पर किसी बच्चे के व्यक्तित्व का सही आकलन नहीं होता है। रटंत तरीके से परीक्षा पास कर ली जाती है। इससे न तो बच्चे की रचनात्मक क्षमता का पता लग पाता है और न ही बच्चे के व्यावहारिक ज्ञान की सही परख हो पाती है। शिक्षा एक एकीकृत व संपूर्ण प्रक्रिया है। पढ़ाई को केवल कक्षा व किताबों तक सीमित रखना तो शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्यों के विपरीत है। इसलिए बच्चों को स्कूल में

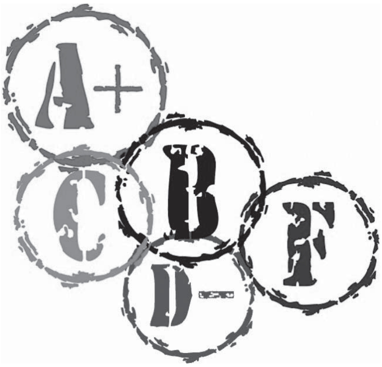

बुनियादी ढ़ाँचा, सुविधाएँ व लचीलेपन के साथ इनपुट्स इस तरह से मिलने चाहिए कि उनसे बच्चे के शैक्षिक, बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास में मदद मिले। मूल्यांकन पढ़ाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इस तरह प्रभावी पठन पाठन और प्रभावी मूल्यांकन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि मूल्यांकन से यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि अध्यापक ने सत्र के दौरान जो बताया, उसे छात्र ने सत्र का अंत होने तक कैसे समझा। जब मूल्यांकन पूरे सत्र के अंत में होता है तो उसके तुरंत बाद अध्यापक व छात्र दोनों प्रक्रिया से दूर हट जाते हैं। ऐसे में मूल्यांकन बिल्कुल अव्यावहारिक बन जाता है। क्योंकि वहाँ प्रक्रिया में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए यह जरूरी है कि पढ़ाने और सीखने की सतत् प्रक्रिया में ही मूल्यांकन को जोड़ा जाए। इससे बच्चे के मन में किसी भी परख व परीक्षा का भय और तनाव नहीं होगा। यहाँ सवाल उठता है कि इस नई पद्धति से क्या कोई बदलाव आयेगा। बाह्य परीक्षा की वजह से बच्चे और उनके माता पिता बहुत मानसिक तनाव एवं चिंता में रहते हैं। खास कर तेरह से पन्द्रह वर्ष के आयु वर्ग के छात्रों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। अभी तक जो व्यवस्था थी उसमें बच्चों को पूरा मौका मिलना चहिए कि वे अपनी कल्पनाओं की अनंत उड़ान भर सकें। ❑

(स्वतंत्र लेखक)

सहायक प्रोफेसर हेतु जुलाई 2009 से पूर्व एम.फिल. या पी.एचडी. में पंजीकृत को नेट की अनिवार्यता से छूट

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उच्च शिक्षा से संबधित विभिन्न माँगों को लेकर केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री एवं प्रधानमंत्री को पत्र लिखे एवं समय-समय महासंघ के प्रतिनिधी मंडल ने मुलाकात की।

महासंघ के अध्यक्ष प्रो. विमल प्रसाद अग्रवाल ने बताया कि माँगों के अनुसार मानव संसाधन विकास मंत्री ने पहले भी काफी सकारात्मक रुख दिखाया और आश्वस्त किया कि इन माँगों को जल्दी ही पूरा किया जाएगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की माँगों के अनुसार प्रो. अरुण नागवेकर की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। उस कमेटी की विभिन्न बैठकों के पश्चात् कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मंत्रालय को सौंपी, उस रिपोर्ट में जुलाई 2009 से पूर्व एम. फिल. या पी.एचडी. में पंजीकृत या अवार्ड को नेट की अनियार्यता से छूट दी है।

साथ ही कुछ सामान्य बिंदुओं को जोड़ा गया है जिनमें पी.एचडी. डिग्री रेगुलर तरीके से प्रदान की गई हो, थीसिस का मूल्यांकन कम से कम दो बाहरी परीक्षकों द्वारा किया गया हो। इसके अलावा अभ्यार्थी की मौखिक परीक्षा खुले तौर पर की गई हो उसके पी.एचडी. के दो शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हों साथ ही दो सेमिनार या कांफ्रेंस में प्रस्तुति दे चुका हो, उसकी इन उपलब्धियों को वाइस चांसलर, प्रो. वाइस चांसलर, डीन ने प्रमाणित किया हो।

महासंघ इन सब बिंदुओं का स्वागत करता है जो शिक्षा की गुणवत्ता के लिए बेहद जरूरी है।

आयोग के इस फैसले से देश के हजारों पी.एचडी. धारकों को लाभ मिलेगा जो यूजीसी के 2009 के दिशा निर्देशों से प्रभावित हुए, इसके तहत कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में सहायक प्रोफेसर के लिए नेट और पी.एचडी. न्यूनतम योग्यता निर्धारित की गई।

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति इरानी ने कहा कि इस फैसले से विभिन्न रिक्त पदों पर नियुक्तियाँ हो सकेंगी। ए.पी.आई. (एकेडमिक परफोरमेंस इंडीकेटर) को भी जल्दी ही सभी के समकक्ष लाया जाएगा और उसका सरलीकरण किया जाएगा। प्रतिनिधी मण्डल महासंघ के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल के नेतृत्त्व में मिला जिसमें उनके अलावा महासंघ के संगठन मंत्री महेन्द्र कपूर, उपाध्यक्ष जगदीश चौहान, संयुक्त सचिव डॉ. मनोज सिन्हा, उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी महेन्द्र कुमार एवं प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल सम्मिलित रहे।

As far as academic Philosophy is concerned, it is still India, and not Bharat. Common distinctions are made between Indian and Western Philosophies in Universities. Let us teach European Philosophy in full swing; let us also be running with the others in the race, but let us positively show the Bharatiya aspect to European Philosophy in class rooms. For everything discussed in Europe, there is always a Bharatiya aspect. They are already discussed in our ancient texts, or there already exists a clear perspective. This must also be delivered to our students besides books from Europe.

Some questions about Semester and Annual System

❑ Dr. TS Girishkumar

It should be called 'hasty anachronism' when it comes to thinking of the so immediate requirement of the UGC and governments to jump to the semester system from annual system, some years ago. This indeed was forcing, and we witnessed the extreme struggle that people had to undergo, and everyone was trying hard to meet the requirement, "somehow, and by any means"

The aftermath

This jumping and running into semester in so short time had created many funny situations. People had to make new syllabi befitting the semester pattern. Creating syllabi is indeed a hazardous and time consuming affair if done conscientiously, and with the atmosphere of pressure and war like situation, this became far flung. Then began the great hocus pocus make shift courses and curricula. At some places people had been prudently motivated practical; they simply split existing syllabi into more than one including the reading list, something like, say, 'transition from India to Bharat 1' and in the next semester 'transition from India to Bharat 2' etc. the authorities seemed to have been happy; and there were none looking into the merits or demerits. Some others, some smart (or crafty) people could 'use' this opportunity to their nefarious ends. Unfortunately there are few people who pattern and formulate their researches and publications given the requirements of academic requirement in given European societies. Worse, there are journals with specific interests, and many times patterning oneself into the mould of such 'cunning' journals shall be leading into divisive theories and eventually anti Nationalism.

The subtle implications

Let us take the example of subaltern studies and feminist studies which are much popular as the in-thing. Prima facie, nothing unusual can be detected. But let us inspect how things go about within such theoretical enterprises. Subaltern studies (inadvertently may be) creates a separation between subaltern and the not subaltern through making this distinction, which can easily turn into divisive speculations and separatism. Similarly, feminism makes women an exclusive category to juxtapose men, which draws the philosophising to exclude a conceptual category, men. We can go on into many such examples if we go on inspecting.

Drawing distinctions to analyse is a very effective tool to better understanding and so far it can be accepted just as a tool. But when such distinctions are maintained, and no efforts are ever thought in terms of some kind of synthesis in some form of some kind of 'Synthetic Unity' (borrowing the expression from Immanuel Kant), the distinctions made remains, and it leads to divisive theories, which shall create separations, separatism and shall lead to anti Nationalism.

Why and how anti Nationalism?

The term and concept anti nationalism gets expressed very often these days when activities of some agencies are discussed. How a thought structure becomes against the Nation Bharat has to be born clear in the mind. We are aware of the very epistemology of Bharat as one that of coexistence, as Bharat had long known the nature of 'Nature' as plural and multiple. Our ancestors knew that each blade of grass in this universe is unique, and there is not another one like any. This epistemology originated from the Vedopanishadic knowledge tradition which perceives 'divinity' in everything, living and non-living as well. There are many expressions right from the Rg Veda to substantiate this position, about which most of us are well aware of. The very unity and integrity of Bharat is this epistemology of coexistence, and this very fact is powerfully explained by Maharishi Aurabindo (Integral Yoga) on a transcendental level and Deen Dayal Upadhyaya ji (Integral Humanism) on a practical level. Metaphysically, Jagadguru Adi Sankaracharya had already provided the strongest edifice possible to this, through his Advaita Vedanta.

Hence such divisive theories becomes anti National, when they make attempts to thwart the epistemology of coexistence of Bharat through separatism distinction maintaining and divisive enterprises. These two cannot coexist, and divisive theories of separatism explicitly contradict the Bharatiya epistemology of coexistence.

We know that originally they are European theories and some of our desi 'murgis' are infatuated with them (for whatever reasons). For Europe, such divisive theories do not matter much, as they always had separatism in many forms. None of them spoke of 'Vasudhaiva Kutumbakam' or 'Ano Bhadra Kritavo Yantu Viswatha'. Their unity is not based on a culture as such, or an epistemology of coexistence of the many, their unity is mostly based of the one language they all speak, sometimes they use their Semitic religion as the unifying principle, and some other time they use geographical identity to remain together. But our case is different, and our case is indeed much stronger in an impeccable manner to remain together as an inescapable one too. This exactly is where we have to go for all-out war against fetishisms with such theories as we see in places like JNU.

Advantages of Semester System

Nonetheless, most of us went for the semester system. Some of us also went for credit system as well, as the two concepts of credit and semester came associated. The prime advantage in semester is that, if done meaningfully, it can cover a vaster area of syllabus and the students learn much more, though the courses often remain shorter than the annual system. Time is utilised more in semester system, and idling becomes less. But, it should be noted that vacation, holidays and other gaps should be re patterned in semester system. Overall, the academic atmosphere of semester is more virulent and active and waste of time is less.

Credit is really a foolish concept. The only thing left to find out is who is fooling whom. Credit signifies a 'band' of marks: from x to y. this varies from institution to institution, and there is no uniformity. A given credit could be anything between two points, and there is no way to exactly fix a student as to where he stands.

It is interesting to note why at all credit came into existence.

European universities are mostly run by the fees collected from students and it is necessary for them to attract maximum students. Normally they go 'fashioning' and tailoring courses into attractive attire, but to offer that a 'respective' credit is guaranteed makes the whole thing more attractive. With credits, everything looks different, modern and at the same time, the 'eyewash' behind remains hidden too.

Why should we go about it at all?

Disadvantages of Semester System

Much of the disadvantages are already spelt out implicitly. The very postulate of this concept need to be questioned, as to do we really need to go for it when we are not sure that it can cover more area than what is in the annual system? In most places we do not have sufficient teachers to teach. Institutions are running either with guest faculty or temporary teachers. The situation need not be explained, all associated with teaching knows it. Semesters doubles up examinations. To what extent are we ready to meet such requirement? Many places they are doing much patch ups to meet the demand, but is that sufficient? Further, the vacation is hardly modified to fit into semester also. Are we technically fit to go on with it?

Let us first make our infrastructure proper, so that semester system can be effective.

Suggestions

In one word, we are not sure as to how many of us are ready and equipped to function legitimately in semester system. Secondly, to extent semester to undergraduate courses really makes a big mess of the whole thing. Semester may be effective in post graduate courses, provided that there are sufficient amount of teachers to it. Calculating 'work load' of teachers in Universities is a funny thing. All that can be done is to count teaching hours per teacher, which really does not reflect the business. How can work load of research be ascertained? It shall be sheer cattle business.

So, the point is, with sufficient teachers Semester is a fine system only for post graduate courses. Undergraduate courses except professional courses should go only on annual system. Under no circumstances the notion of credit be allowed, why should we blindly follow Europe? At the most, let us give marks, and print pertaining credit pattern overleaf the mark sheet. But let us only give marks. I do not know what to do next. Should we go on in the semester as it had set in for some years, or should we revert back? Both views go on. Probably, let us go on in the semester way for post graduate courses and revert the annual pattern for undergraduate courses. We should seriously think further.❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Lecture on 'The Teacher: Past & Present' at Vishva Bharati

Visva-Bharati Shaikshik Sangh affiliated to ABRSM organized an interactive session with educationist and All India joint secretary of RSS Dr.Krishna Gopal ji and editor of 'Barttaman' (a daily bangle news paper) Shri Rantideb Sengupta on 24th April 2016 on the Theme THE TEACHER: PAST & PRESENT at the Conference Hall, Centarl Library, Visva-Bharati University, Santiniketan. Dr. Krishna Gopal ji spoke on the topic for one and half hours and interacted with the gathering of about 300 persons which included mainly faculty members, staff members and research scholars of Visva-Bharati University and some invited outside guests. The programme was moderated by Dr. Subhash Chandra Roy (Department of Hindi). Welcome address was given by Prof. Chakradhar Tripathi (Department of Hindi). Vote of thanks was given by Dr. Umesh Kumar Singh (Department of Environmental Science).

The ultimate objective of the any education system should be to produce useful youth with potential or talent and aspiring for bright career, at the same time they should have good character building to play an important role for the nation. A good number of examples may be given to students e.g. Pandit Deen Dayal Upadhyay, Dr. B. R. Ambedkar, Swami Vivekanand etc to name a few persons in the recent past. Similarly others can be named from different time segments which can be real role models to present day students. So far as having impact politically should not be the only objective. The objectives of the present time education and assessment system should be to raise level of their performance and level of confidence.

Assessment and Education

❑ **Dr. A. K. Gupta**

In any education system assessment has its importance. The objective remains same i.e. to get evaluation of the students of what and how far they have learnt from a teacher over certain time. This evaluation is then used to judge performance of the students for future use. Accordingly the education system and based on that evaluation cannot be treated separately. The result not only shows efficiency of a student how far he / she could learn from a teacher but also to some extent also shows an indicative way teaching skills of a teacher. Although it cannot be treated as quantitative analysis for a teacher, since there are numerous factors which can be held responsible to affect the result.

Skills may be divided into groups to name a few e.g. memory storage and recalling, oral ability, reproducing what is taught, group discussion, or to perform on some process etc. Well there may be good number of other skills e.g. painting/ drawing/ sketching or simply to play on a particular type of musical instrument etc. Application of a particular skill may be fit for a particular use but not for others. One can make a group accordingly but it cannot be generalised. There may be some qualities which cannot be evaluated in traditional manner e.g. Samskars or simply moral education so to say. Its importance cannot be underestimated since it is very useful quality in a person which builds a society or a nation.

It is basically planners who have to foresee changes in the society and plan accordingly. Need of a particular society may varying with passage of time. The HRD of the society has to cater needs of the society. The education system has to be developed to suit need of the society. The course has to be designed or altered accordingly. The evaluation system has to follow to categorise the lot so processed.

Learning in small segments and assessing it is much useful since it maintains continuity. Therefore preference of semesters is considered better option over annual scheme. It may be spread over two or three semesters over a year or session. the whole process is then categorised into small groups of subjects e.g. theory papers, practical

and sectionals, tour/ training/ seminar/ project etc to suits the requirement of the course for which they are designed.

Situation of education system and that of the examination should be kept alike and nearer to field application so as make the candidates aware of their performance level. The gap between real world where a student is supposed to apply skill learnt and the conditions where it is to be implemented, should be minimsed. Therefore it is basically judgement of the candidate's skills to apply what is learnt over the period. Open book examination or providing certain references is then required to judge the skill of applying to real conditions.

Provision of relevant IS codes or some other standard text may be required depending upon the need. All this has to be mentioned clearly in the teaching and examination scheme to make it clear to candidates going for examination and the evaluators there of. Any kind of ambiguity should be refrained. One should be very clear in his/ her mind about the prevailing market conditions to get optimal solution. Simply asking to get a solution without any idea of the market conditions may lead to trivial results. The whole set up has to be planned to suit the dynamic society.

Here if we consider the case of a course transferred from a certain stream to a different stream it will have its own impact on the teachers and taught, e.g. B.E. Building and Construction Technology course was transferred from Architecture & Town Planning to Structural Engineering Department. The whole scenario was changed. The course is in SFS scheme, therefore no regular faculty is allowed to be appointed. The department of Architecture and Town Planning being a non engineering department has a different approach to deal the subject where Structural Engineering Department has different approach. The Course is developed to cater certain needs of the society, in particular building and construction Technology which as the name suggests is expected to deal with every aspect of Infrastructure Engineering, since it has to consider several aspects of construction technology rather than Analysis and Design which may be a major concern of Civil engineering Students.

For students of any course the basic requirement remains that of the relevant job and further study after getting UG degree. If something prevents it then the fault lies with the administration or planners. recently as appeared in the print media that AICTE allowed typical similar nomenclature for courses being run by private institutions. Simply to keep safe guard interest of the competing Government Institutions.

The whole change in the approach of teaching and examination scheme will definitely have its impact on the Assessment scheme and style. This will have its affects on the lot being under process of study. In Engineering one has to re think and plan accordingly. Educational Institutions are slow to show changes in their infrastructure then practically what is happening in the field. The other aspects of study cannot be treated as obsolete e.g. Tour/ Training/ Project etc.

There are different regulatory bodies for various streams e.g. UGC, AICTE, COA, BCI, MCI etc.

Time is just right to have in depth thinking to modify suitable changes to provide meaningful changes in the interest of the society.

One common mission should be thought of having different branches to address needs of various segments/ sectors in the society. Having different bodies normally leads to confusion and may be fetch some serious legal problems. Ultimately it is the private sector which may find a short cut to achieve success in their objective. This may be dangerous leading game players dealing with many young lives to their dismay and frustration.

The ultimate objective of the any education system should be to produce useful youth with potential or talent and aspiring for bright career, at the same time they should have good character building to play an important role for the nation. A good number of examples may be given to students e.g. Pandit Deen Dayal Upadhyay, Dr. B. R. Ambedkar, Swami Vivekanand etc to name a few persons in the recent past. Similarly others can be named from different time segments which can be real role models to present day students. So far as having impact politically should not be the only objective. The objectives of the present time education and assessment system should be to raise level of their performance and level of confidence. Inculcating Self pride about one's own culture and NATION should be focused. ❑

(Professor, Structural Engineering Department, JNV University, Jodhpur)

Centre's plan: Must meet minimum Standard for promotion to Class IX

❑ **Ritika Chopra**

Promotion to Class IX may soon become conditional in all schools as the Centre wants students to achieve some basic learning outcomes up to Class VIII.

The HRD ministry has sought Attorney General Mukul Rohatgi's opinion on whether the government can issue orders under the Right to Education (RTE) Act 2010 to ensure students meet the Minimum Standards of Academic Performance (MSAP), prescribed by a school in all subjects from Class V to VIII, before being promoted to Class IX.

The 'no-fail' policy of the RTE Act prohibits detention and expulsion of students until completion of elementary education, that is till completion of Class VIII. Both private and government schools had interpreted this to mean compulsory promotion up to Class IX.

Now, six years after the law was enacted, the government has drafted an executive order to clarify that enrolment in Class IX can be conditional. The HRD ministry will issue orders to this effect once it has Rohatgi's nod.

According to the ministry's note sent to the Attorney General, the government has proposed that students should be assessed through Continuous Comprehensive Evaluation (CCE) from Class V to VIII and, at the end of each year, the school should award a certificate stating whether he/ she has attained the MSAP for the particular class.

No child, the note further states, will be detained for not meeting the MSAP and the backlog will be carried over to the next year till Class VIII. Such students will receive additional instructions from the teachers to cope with the backlog of learning.

However, promotion to Class IX will only be possible if the student has completed his/ her backlog of learning. It clarifies that absenteeism from class or absenteeism during the evaluation process shall also qualify as a child being unable to meet MSAP, and this shall clearly be mentioned in the certificate.

"It's a little like voting. Everyone has the right to vote in this country, but only after you've turned 18 years

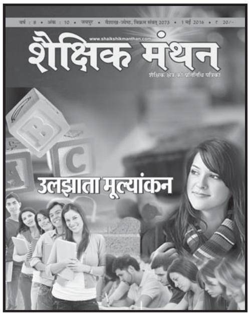

13 state governments want this policy to be scrapped on the ground that it is contributing to a sharp decline in the quality of the students at the elementary level. Since promotion is guaranteed, schools claim students don't take classroom learning seriously and are enrolled into secondary level without having learnt enough in elementary school. This, they claim, leads to mass student failures in Class IX when they face the first serious examination.

old. Similarly, a student will have the right to enrol into secondary education, but provided he/ she can demonstrate some basic learning," said a senior ministry official on condition of anonymity.

The proposed step, government sources said, was prompted by the criticism of the no-detention policy (Section 16) under the RTE Act, which prohibits all schools from failing and expelling a student up to Class VIII.

The rationale behind this policy is that compelling a child to repeat a class is demotivating and discouraging, often forcing him or her to abandon school/ learning altogether. Similarly, the notion of "expulsion" is not compatible with the concept of "right". Hence, the Act, in order to make elementary education a "right", prohibits failing and expulsion of all students till completion of Class VIII.

As many as 13 state governments want this policy to be scrapped on the ground that it is contributing to a sharp decline in the quality of the students at the elementary level. Since promotion is guaranteed, schools claim students don't take classroom learning seriously and are enrolled into secondary level without having learnt enough in elementary school. This, they claim, leads to mass student failures in Class IX when they face the first serious examination.

HRD Minister Smriti Irani is learnt to have proposed the minimum eligibility for promotion to Class IX to resolve issues with the 'no-fail' policy, without having to amend the Act.

On being asked if the draft order still violates the RTE Act as it would amount to holding a child back in Class VIII, a senior official argued that this is legally tenable as the government, technically, is allowing students to complete elementary education. "But the right to continue beyond elementary level will depend on whether they have attained minimum learning," the official said. The ministry note quotes six Supreme Court and high court orders interpreting the RTE Act to justify the proposal.❑

Higher Education and the Teachings of Dr. B. R. Ambedkar

This year on 6th April, The Shaikshik Foundation had organized a lecture on the theme "Higher Education and the Teachings of Dr. B. R. Ambedkar" in the Seminar Hall of Kirorimal College, University of Delhi. Prof. Sanjay Paswan, Former Union Minister of State in NDA-1 government came as main speaker. Other speakers were Prof. Shri Prakash Singh, Department of Political Science, DU and Dr. Himanshu Prasad Roy, Deendayal Upadhyay College, DU. Nearly 200 teachers had attended this lecture.

Dr. Paswan highlighted salient works of Dr. Ambedkar to be specific. How Dr. Ambedkar was sidelined in the Congress party and how he debated his own idea of nationalism with the leftists communists combine, Dr. Paswan elaborated on all these issues. He praised Narendra Modi government as the first one and Sh. Modi as the first PM who has given a lecture in the memory of Dr. Ambedkar very recently in Parliament. He said that Dr. Ambedkar was a world citizen. He stressed upon the fact that There is a clear need to re-invent and re-visit Dr. Ambedkar in the present scenario.

Prof. Shri Prakash Singh highlighted the entire literature written by Dr. Ambedkar. He informed the gathering that it is widely available. Hindi collection of 17 volumes is of Rs. 1800/- and English collection of 21 volumes is of Rs. 2100/-. According to him, Dr. Ambedkar used "Reserved Category" in his entire discourse. He said that mere getting the degrees will not be sufficient, wisdom does not along with degrees. He stressed upon his tense relationship with Sh. Jawaharlal Nehru and how he emphasized the need of stopping the conversion process of dalit community members at the behest of christian missionaries. He also advocated the need of maintaining a safe corridor to bring back the dalits / reserved category persons from Pakistan to India. He was all for autonomy of educational institutions and was clearly against the supremacy of any singular ideology.

Dr. Himanshu Roy elaborated three main points in the teachings of Dr. Ambedkar. These are:

1. Religion is necessary for the free society, 2. Everyone has a right to learn and 3. Education without character is poison

According to Dr. Roy, a brief statement by Dr. Ambedkar summarized his viewpoint about contemporary political situation "I dislike Gandhi and Jinnah because I love India more". Regarding education, Dr. Ambedkar said "Educate yourself" and was of the view that primary education should be in the mother tongue and should be available to all. He was a votary of skill based education based on science and technology. He was of the view of having less government spending in the areas of social sciences and law. He was a votary of an integrated cadre for teachers and for the transfer of teachers.

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शिक्षा दर्शन

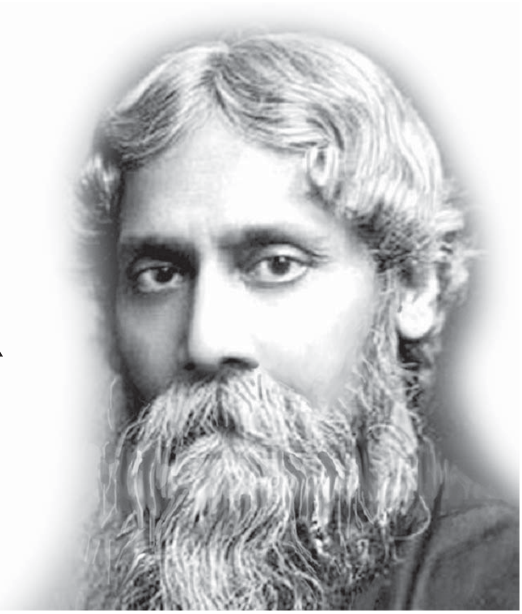

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

पश्चिम बंगाल में साधारण परिवार में 7 मई 1861 को पिता पिराली ब्राह्मण देवेन्द्र नाथ तथा माता शारदा देवी की 13 जीवित संतानों में से सबसे छोटे पुत्र थे। इनकी माता का बाल्यकाल में देहान्त हो जाने एवं पिता की व्यस्तता के कारण इनकी देखभाल नौकरों द्वारा की गई। 1871 में मृणालिनी के साथ विवाह हुआ। इनके 5 संतानों में से 2 बचपन में स्वर्ग सिधार गये। इन्होंने कवि, चित्रकार, संगीत, लेखन, उपन्यासकार, समाजसुधार, शिक्षक जैसे अनेक क्षेत्रों में महारत पाई। बंगला भाषा में इन्होंने कवितायें, उपन्यास लेख लिखे। 1883 में भारत के राष्ट्रगान जन-गण-मन की रचना की जिसे 27 दिसम्बर 1911 को कांग्रेस अधिवेशन में गाया गया। यही नहीं उनके बंगाली भाषा में लिखे 'अमार सोनार बंगला' गीत को बंगला देश ने राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किया। ठाकुर ने भौतिक, रसायन, जीव विज्ञान, खगोल शास्त्र का भी विशद अध्ययन किया। इनके द्वारा लिखित प्रमुख कृतियों में – साधना, बालका, भानुसिंह पदमावती, कविता संग्रह मानसी, योगायोग, क्रियेटिव यूनिट पर्सनेलिटी द रिलीजन ऑफ मेन प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रसिद्ध काव्यकृति 'गीतांजलि' को (इनके 52 वर्ष के उम्र में) सन् 1913 में नोबल पुरस्कार मिला तथा विश्व कवि की उपाधि दी गई। इन्होंने मात्र 26 वर्ष की उम्र में कहानियाँ लिखनी प्रारंभ की, जबकि 60 वर्ष की उम्र में चित्रकारी सीखी। इनको आइन्स्टीन, बर्नाड शा, एच.जी. वेल्स, रोबर्ट फ्रोस्ट जैसी विश्व प्रसिद्ध हस्तियों से विचार विमर्श का अवसर मिला था। ठाकुर ने अपने गम्भीर चिंतन से निबन्ध, सार्थक कथा, सरस कविताओं द्वारा अमरत्त्व, ईश्वर तथा मानव प्रेम के उद्दात आदर्शों से प्रेरित होकर ''आधुनिक भारतीय चिंतन'' में अग्रगण्य स्थान प्राप्त किया। डॉ. मुखर्जी के शब्दों में– ''ठाकुर ने जन शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, मानव धर्म शिक्षा, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था के लिए सबसे पहले बिगुल बजाया। ठाकुर के लेखन में राष्ट्रीयता की भावना, स्वदेश को समृद्ध और समर्थ बनाने की आकाँक्षा दिखाई देती है।''

ठाकुर का प्रकृति शैक्षिक दर्शन

रवीन्द्र नाथ ठाकुर बच्चों की प्रकृति और पालन पोषण की तुलना वृक्ष से करते हुए लिखते हैं कि– ''बच्चों में क्रियाशील अर्द्धचेतन मस्तिष्क

ठाकुर अभिभावकों को सलाह देते हुए कहते हैं कि- '' अपने बच्चों को नीले आसमाँ के नीचे जी भरकर शांति से उछलने - कूदने दो। उन्हें प्रकृति की गोद से परे मत करो। वृक्षों और लताओं से बने प्रकृति के मनोरम रंगमंच पर ऋतुओं के अदल -बदल का अजूबा उनके सामने प्रकट होने दो। .... बच्चों के आनन्द में खलल डालने का आपको कोई अधिकार नहीं है। अपने बालकों को इस विशाल जगत में भली प्रकार आँखें खोलकर प्रकृति माता के मन भरने तक दर्शन करने दो।'' ठाकुर का मानना है कि - ''प्रकृति ही हमारी सजीव शिक्षक है। वह मनुष्य जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं एवं माँ के समान व्यक्तित्त्व का संवेगात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पोषण करती है।''

एक वृक्ष के समान होता है। जिसमें चारों ओर के वातावरण से भोजन एकत्रित करने की शक्ति होती है। उनके लिए नियमों विधियों, भवनों, उपकरणों, कक्षा शिक्षण एवं पुस्तकों की अपेक्षा वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। '' ठाकुर अभिभावकों को सलाह देते हुए कहते हैं कि- '' अपने बच्चों को नीले आसमाँ के नीचे जी भरकर शांति से उछलने -कूदने दो। उन्हें प्रकृति की गोद से परे मत करो। वृक्षों और लताओं से बने प्रकृति के मनोरम रंगमंच पर ऋतुओं के अदल -बदल का अजूबा उनके सामने प्रकट होने दो। .... बच्चों के आनन्द में खलल डालने का आपको कोई अधिकार नहीं है। अपने बालकों को इस विशाल जगत में भली प्रकार आँखें खोलकर प्रकृति माता के मन भरने तक दर्शन करने दो।'' ठाकुर का मानना है कि - ''प्रकृति ही हमारी सजीव शिक्षक है। वह मनुष्य जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं एवं माँ के समान व्यक्तित्त्व का संवेगाात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पोषण करती है।'' ठाकुर के शिक्षा दर्शन में प्रसिद्ध प्रकृति प्रेमी रूसो के दर्शन की झलक मिलती है। जिसके कारण वे प्रकृति और मनुष्य के शाश्वत सम्बन्धों को नजदीक से परखते थे। उन्होंने प्रकृति से सीखने-सिखाने की अवधारणा को स्वीकार किया। प्रकृति के चितेरे ठाकुर को स्कूल व्यवस्थाओं में यांत्रिकता तथा बोझिलपन से चिढ़ थी। उनका मानना था कि देशकाल व परिस्थिति की आवश्यकतानुसार विद्यालय व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहिये। ठाकुर का कहना था कि विद्यालय शहर से दूर खुले आसमां के नीचे विशाल मैदान में, प्राकृतिक वृक्षों के बीच होना चाहिए। वे वर्तमान विद्यालयी व्यवस्था को अनुपयुक्त मानते हुए कहते हैं

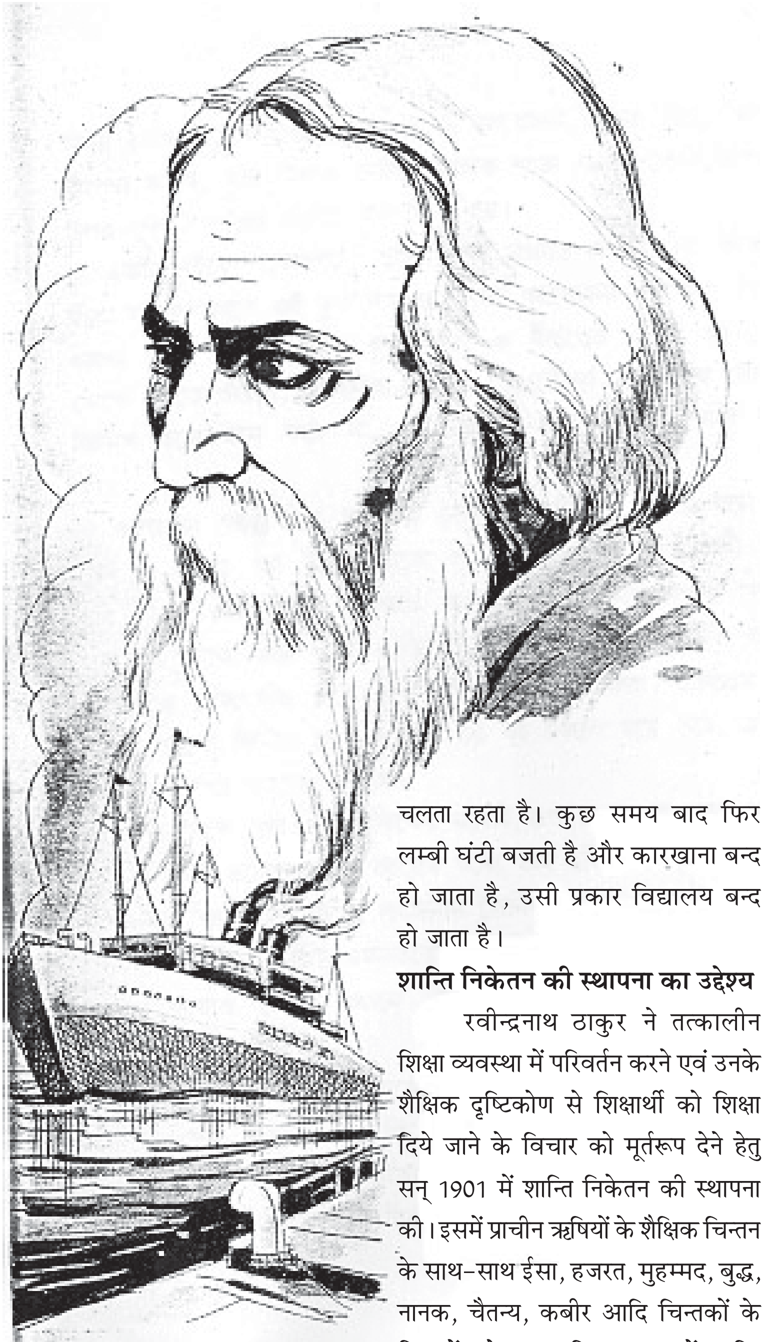

कि- ''इस देश में हम जिन्हें विद्यालय कहते हैं, वह शिक्षा देने का एक कारखाना है। अध्यापक इस कारखाने के अंग हैं। सुबह घंटी बजती है, कारखाना खुलता है। कल चलती है और साथ ही अध्यापक का मुँह चलता रहता है। कुछ समय बाद फिर लम्बी घंटी बजती है और कारखाना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार विद्यालय बन्द हो जाता है।

शान्ति निकेतन की स्थापना का उद्देश्य

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन करने एवं उनके शैक्षिक दृष्टिकोण से शिक्षार्थी को शिक्षा दिये जाने के विचार को मूर्तरूप देने हेतु सन् 1901 में शान्ति निकेतन की स्थापना की। इसमें प्राचीन ऋषियों के शैक्षिक चिन्तन के साथ-साथ ईसा, हजरत, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, चैतन्य, कबीर आदि चिन्तकों के विचारों को स्थान दिया। बाद में शान्ति निकेतन विकसित होकर विश्व भारती के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। विश्व भारती में अनेकों विभाग है, जिन्हें भवन कहते हैं, ये हैं-पाठ भवन, शिक्षा भवन, विद्या भवन, विनय भवन, कला भवन, संगीत

भवन, हिन्दी भवन, श्री निकेतन एवं एवं शिल्प भवन तथा विशाल पुस्तकालय भवन स्थापित है। विश्व भारती का मानवतावाद, विश्व एकता, सृजनात्मकता, कलात्मक अभिव्यक्ति स्वतंत्रता, सौंदर्यबोध, प्राकृतिक जीवन स्वाध्याय के अवसर देने जैसे भारत की शिक्षण संस्थाओं के लिए मार्गदर्शक संस्था है। विश्व भारती का उद्देश्य पूर्ण शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विकास करने का है। प्रकृति की गोद में शिक्षा ग्रहण करने के पक्ष में बोलते हुए ठाकुर कहते हैं कि – ''हमने शिक्षा को दीवारों से घेर कर, द्वार से रोक कर, संतरी बिठाकर, दंड के प्रावधान कर तथा घंटे-घंटियों से बालक को बाँधकर विचित्र रूप दे दिया है। ठाकुर शारीरिक दंड दिये जाने के विरोधी थे। उनका कहना था कि – ''दंड देने के स्थान पर विद्यार्थी को प्रायश्चित करना सिखाना चाहिए। जब दूसरा व्यक्ति दंड देता है तो उसमें प्रतिशोध की भावना घर कर जाती है, जो बाद में हानिकारक होती है। ठाकुर विद्यालय को कारखाना भर न मानकर, मनुष्य निर्माण का संस्थान बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि कारखाने में सभी वस्तुएँ साँचे में ढालकर एक जैसी ही बनाते हैं। जबकि प्रत्येक बालक का मन, रुचि, इच्छा, अपेक्षा, वृत्ति, क्षमता, भविष्य की योजना भिन्न-भिन्न होती है। तब उसे एक ही डंडे से चलाना कैसे संभव है। विद्यार्थी के स्वभावानुसार कार्य क्षमतानुसार , ग्रह्यता के अनुसार मनोवैज्ञानिक रूप से शिक्षा दी जाये, वही प्रभावी होती है। बालकों को किसी प्रकार स्कूल समय होने तक जल्दी -जल्दी भोजन निगलकर शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से स्कूल पहुँचने, उपस्थिति देने को ठीक नहीं मानते थे।

ठाकुर का शिक्षा दर्शन

शिक्षक एवं शिक्षार्थी के रूप में ठाकुर की वाणी एवं व्यवहार से गुरु शिष्य सम्बन्ध शिक्षण संस्था शिक्षार्थी, शिक्षक और अभिभावक शिक्षा और शासनतंत्र शिक्षा और समाज जैसे उपांगों पर उनका कहना था कि शिक्षा एक पद्धति है जिससे समाज को ज्ञान के स्रोत और सिद्धान्त मिलते हैं। ज्ञान सर्व-व्यापक होता है, ज्ञान को सीमित करना-विकास को रोकना है। वे अन्धानुकरण की अपेक्षा सबके साथ, सब में प्रेम, विश्वास, सहयोग और आदर्श चाहते थे। ठाकुर को विश्वास था कि – ''शिक्षा न केवल आवागमन से वरन आर्थिक, सामाजिक , राजनैतिक और मानसिक दासता से मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती है। मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस ज्ञान का संग्रह करना चाहिए, जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है, यही सच्ची शिक्षा है। ठाकुर चाहते थे कि शिक्षा के द्वारा जनसाधारण की भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। इसलिए उन्होंने शिक्षा को मनुष्य के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित करने पर बल दिया तथा शिक्षा के उद्देश्यों को स्थापित करते हुए चाहा कि बालक में (1) शारीरिक विकास (2)बौद्धिक विकास (3) आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास (4) व्यक्तित्व का विकास (5) सामाजिक विकास (6) राष्ट्रीयता का विकास (7) अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास देने वाली शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाये।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शिक्षा व्यवस्था को सुचारु, जनोपयोगी विद्यार्थी हित में किए जाने हेतु वर्तमान शिक्षकों की कार्य प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए कहा कि – ''आज के शिक्षक दुकानदार हो गए हैं। विद्यादान उनका व्यवसाय हो गया है। इसलिए वे खरीददार की खोज में फिरते रहते हैं। लेकिन उनकी बिक्री की सूची में स्नेह, श्रद्धा, निष्ठा आदि गुण भी रहेंगे, ऐसी आशा करना बेकार है। इस इस कारण आज की शिक्षा में अधूरापन दिखाई देता है। इसका एक कारण यह है कि समाज में 'गुरु' का लोप हो गया है। केवल व्यवसायी, स्वार्थग्रस्त, वेतनभोगी शिक्षक देखे जा रहे हैं।''

इसलिए ठाकुर का कहना था कि शिक्षक को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने हेतु अपने विषय में प्रवीण होने के साथ-साथ हृदय में प्रेम करुणा, उपकार, संवेदनशीलता का व्यवहार करना होगा। शिक्षक को व्यापारी नहीं, वरन् स्वाभिमानी होना चाहिए। शिक्षक को अपने ज्ञान एवं विवेक से शिक्षार्थी का उसके लक्ष्य तक पहुँचाना तथा ज्ञान की ज्योति जलाना चाहिए। अर्थोपार्जन के सामने नैतिक मूल्यों तथा आदर्श को तिलांजलि न दें। मानवीय संवेदना, विचारों की स्वतंत्रता, आत्मा की महत्ता, समाज सेवा का दृष्टिकोण रखना होगा। उसका विद्यालय व्यक्ति निर्माण करने वाली संस्था, शिक्षक निर्माणकर्ता शिक्षार्थी निर्माणी बनें। विद्यालय का वातावरण बोझिल, यंत्रवत न होकर, सरल, आत्मीय, स्नेह बढ़ाने वाला हो। शिक्षण व्यवस्था ऐसी हो कि बच्चे अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार अभिव्यक्त कर सकें। भौतिक संसाधनों की अपेक्षा मानवीय संसाधनों को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। समाज और देश निर्माण में शिक्षक और शिक्षण संस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान होना चाहिए। ठाकुर के शैक्षिक दर्शन में प्रकृतिवादी चिन्तन ने उन्हें व्यावहारिक शिक्षाशास्त्री बना दिया है। ठाकुर आधुनिक भारत के शैक्षिक पुनरुत्थान के महानतम अग्रदूतों में एक हैं। ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

मुफ्त शिक्षा का क्या हुआ

❑ जावेद अनीस

भारत में मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा कानून लागू हुए सात साल हो गए। इस कानून को बनाने में हमें पूरे सौ साल लगे। 1910 में गोपाल कृष्ण गोखले ने सभी बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा के अधिकार की माँग की थी। इसके बाद 1932 वर्धा में हुए सम्मेलन में महात्मा गाँधी ने इस माँग को दोहराया था लेकिन बात बनी नहीं। आजादी के बाद शिक्षा को संविधान के नीति-निर्देशक तत्त्वों में ही स्थान मिल सका, जो कि अनिवार्य नहीं था और यह सरकारों की मंशा पर ही निर्भर था। 2002 में भारत की संसद में 86वें संविधान संशोधन द्वारा इसे मूल अधिकार के रूप में शामिल कर लिया गया। इस तरह से शिक्षा को मूल अधिकार का दर्जा मिल सका। 1 अप्रैल 2010 को शिक्षा का अधिकार कानून -2009 पूरे देश में लागू हुआ। अब यह एक अधिकार है जिसके तहत राज्य सरकारों को यह सुनिश्चित करना है कि उनके राज्य में 6 से 14 साल के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ-साथ अन्य जरूरी सुविधाएँ उपलब्ध हों और इसके लिए उनसे किसी भी तरह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शुल्क नहीं लिया जा सकेगा।

इस कानून को लागू करने से पहले भी भारत में बुनियादी शिक्षा को लेकर काफी समस्याएँ थीं और कानून आने के बाद इसमें कुछ नई दिक्कतें भी जुड़ी हैं, जैसे पर्याप्त और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, शिक्षकों से दूसरे काम कराया जाना, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन व्यवस्था को लेकर जटिलताएँ, नामांकन के बाद स्कूलों में बच्चों की रुकावट और बच्चों के बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर अभी बड़ी चुनौतियाँ हैं, लेकिन इसके सकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिल रहे हैं। आज लगभग सौ प्रतिशत नामांकन हो गया है, जो की एक बड़ी उपलब्धि है और अब शहर से लेकर दूरदराज के गाँवों में लगभग हर बसावट या उसके आसपास स्कूल खुल गए हैं।

उपलब्धियाँ होने के बावजूद हमारी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था लगातार आलोचनाओं के घेरे में रही है। इस दौरान भारत में बुनियादी शिक्षा को लेकर जितनी भी रिपोर्ट्स आई हैं वे अमूमन नकारात्मक रही हैं। मीडिया में भी इसकी बदहाली की ही खबरें प्रकाशित होती हैं। सवाल उठता है कि आखिर इसकी वजह क्या है? क्या कानून में कोई कमी रह गई है या फिर हम इसे ठीक से लागू ही नहीं कर पा रहे हैं? इस बात की भी गुंजाइश है कि इस कानून के खिलाफ जानबूझ

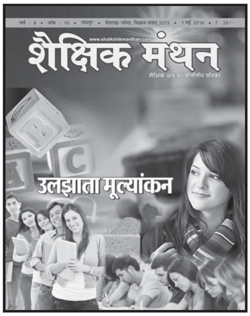

आलोचनाओं और दुष्प्रचार की वजह से सरकारी स्कूलों से लोगों का भरोसा लगातार कम हुआ है और छोटे शहरों, कस्बों और गाँवों तक में बड़ी संख्या में निजी स्कूल खुले हैं। इनमें से ज्यादातर निजी स्कूलों की स्थिति सरकारी स्कूलों से भी खराब है और उनका मुख्य ध्यान शिक्षा नहीं ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कूटना है। 'एसोचैम' के एक हालिया अध्ययन के अनुसार बीते दस सालों के दौरान निजी स्कूलों ने अपनी फीस में लगभग 150 प्रतिशत बढ़ोतरी की है। शिक्षा क्षेत्र एक व्यापार के रूप में स्थापित हो चुका है जो सफल भी है, इस सफलता का कारण यह है कि निजी स्कूल जो लोग चला रहे हैं उनमें समाज के सबसे प्रभावशाली वर्ग के लोग शामिल हैं।

कर इसे निकम्मा साबित करने के लिए दुष्प्रचार किया जा रहा हो जिससे इसे एक ऐसे निष्क्रिय और अनावश्यक व्यवस्था के रूप स्थापित किया जा सके जिसमें सुधार करना नामुमकिन है।

आलोचनाओं और दुष्प्रचार की वजह से सरकारी स्कूलों से लोगों का भरोसा लगातार कम हुआ है और छोटे शहरों, कस्बों और गाँवों तक में बड़ी संख्या में निजी स्कूल खुले हैं। इनमें से ज्यादातर निजी स्कूलों की स्थिति सरकारी स्कूलों से भी खराब है और उनका मुख्य ध्यान शिक्षा नहीं ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कूटना है। 'एसोचैम' के एक हालिया अध्ययन के अनुसार बीते दस सालों के दौरान निजी स्कूलों ने अपनी फीस में लगभग 150 प्रतिशत बढ़ोतरी की है। शिक्षा क्षेत्र एक व्यापार के रूप में स्थापित हो चुका है जो सफल भी है, इस सफलता का कारण यह है कि निजी स्कूल जो लोग चला रहे हैं उनमें समाज के सबसे प्रभावशाली वर्ग के लोग शामिल हैं। इधर सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या लगातार घट रही हैं जबकि निजी स्कूलों में इसका उल्टा हो रहा है। देश के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक (कैग) की ताजा रिपोर्ट के अनुसार सरकारी स्कूलों में वर्ष 2010-11 में कुल नामांकन 1 करोड़ 11 लाख था, जो 2014-15 में 92 लाख 51 हजार रह गया है, जबकि निजी स्कूलों में छात्रों की संख्या में 2011-12 से 14-15 में 38 प्रतिशत बढ़ी है। इन सबके बावजूद भारत के 66 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालय के छात्र सरकारी स्कूल या सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में जाते हैं।

कानून की भी सीमाएँ हैं जिसका दुष्प्रभाव भी देखने को मिल रहा है, यह कानून 6 से 14 साल की उम्र के ही बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार देता है और इसमें 6 वर्ष के कम आयु वर्ग के बच्चों की कोई बात नहीं की गई है यानी बच्चों के प्री-एजुकेशन को नजरअंदाज किया गया है। 15 से 18 आयु समूह के बच्चे भी कानून के दायरे से बाहर रखे गए हैं। इसी तरह से निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटों पर कमजोर आय वर्ग के बच्चों के आरक्षण की व्यवस्था की गई है। यह एक तरह से गैर बराबरी और शिक्षा के बाजारीकरण को बढ़ावा देता है और सरकारी शालाओं में पढ़ने वालों का भी पूरा जोर निजी स्कूलों की ओर हो जाता है। जो परिवार थोड़े-बहुत सक्षम हैं वे अपने बच्चों को पहले से ही निजी स्कूलों में भेज रहे हैं लेकिन जिन परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर हैं, उन्हें भी इस ओर प्रेरित किया जा रहा है।

कानून को लागू करने में भी भारी कोताही देखने को मिल रही है। बीस प्रतिशत स्कूल तो एक ही शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं और उनका भी ज्यादातर समय रजिस्टर भरने और मिड-डे मील का इंतजाम करने में चला जाता है। इसी तरह से स्कूलों को अतिथि शिक्षकों के हवाले कर दिया गया है जो शिक्षक कम और ठेके का कर्मचारी ज्यादा लगता है। इन सबका असर शिक्षा की गुणवत्ता और स्कूलों में बच्चों की रुकावट पर देखने को मिल रहा है। बजट को लेकर भी समस्याएँ हैं। नवीनतम बजट में सर्व शिक्षा अभियान के लिए 52 प्रतिशत राशि ही आवंटित की गई है, लेकिन सबसे बड़ी समस्या तो सरकारों के रवैये में है। कानून बन जाने के बाद वे इसे सब्सिडी योजना के नजरिए से ही देख रही है।

जन-भागीदारी और निगरानी की बात करें तो शिक्षा कानून के तहत स्कूलों के प्रबंधन में स्थानीय निकायों और स्कूल प्रबंध समितियों को बड़ी भूमिका दी गई है। कानून के अनुसार स्थानीय निकाय स्कूल के विकास के लिए योजनायें बनायेंगी और सरकार द्वारा दिए गए अनुदान का इस्तेमाल करेंगी और पूरे स्कूल के वातावरण को नियंत्रित करेंगी लेकिन ऐसा हो नहीं पाया हैं, इसके पीछे कारण यह है कि या तो लोग पर्याप्त जानकारी और प्रशिक्षण के आभाव में निष्क्रिय हैं या फिर एक दूसरे पर दोष मढ़ने और अपना निजी फायदा देखने में व्यस्त हैं। गुणवत्ता समेत सहित सभी पहलुओं पर निगरानी के लिए राष्ट्रीय और राज्य बाल अधिकार आयोगों को भूमिका दी गई थी। आयोग बन भी गए हैं, लेकिन निगरानी का तंत्र भी अभी तक विकसित नहीं हो पाया है।

इन सब रुकावटों के बावजूद कुछ ऐसी कहानियाँ और प्रयोग हैं जो उम्मीदों को बनाए हुए हैं। हमें यह समझना होगा कि शिक्षा केवल राज्य का ही विषय नहीं है और केवल ठीकरा फोड़ने से मामला और बिगड़ सकता है। स्कूलों को सरकार और समाज मिल कर ही सुधार सकते हैं। ❑

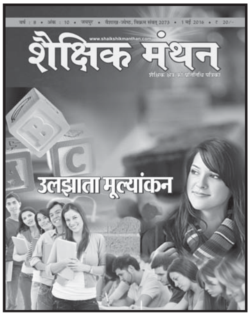

ट्यूशन को लेकर लोगों में इस आकर्षण के बढ़ने का कारण क्या है? इस संबंध में उल्लेखनीय होगा कि अपने बच्चों को ट्यूशन भेजने वाले अभिभावकों से जब एनएसएसओ ने सर्वेक्षण के दौरान यही सवाल पूछा तो उनमें नवासी प्रतिशत का कहना था कि अपने बच्चों को ट्यूशन भेज कर वे उनकी शैक्षिक बुनियाद मजबूत कर रहे हैं। इनमें बहुतों ने स्कूल के वृहद् पाठ्यक्रम के मद्देनजर ट्यूशन लेने को आवश्यक बताया, तो कई अभिभावकों का तो स्पष्ट रूप से यही कहना रहा कि स्कूली शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं होने के कारण उन्हें अपने बच्चों को ट्यूशन भेजना पड़ रहा है। यह देखते हुए समझना आसान है कि ट्यूशन के प्रति लोगों में बढ़ रहे आकर्षण का मुख्य कारण स्कूली शिक्षा पर से उनका विश्वास कमजोर होते जाना है।

ट्यूशन का बढ़ता आकर्षण

❑ पीयूष द्विवेदी

स्कूल-कॉलेजों में न सिर्फ शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है, बल्कि निजी ट्यूशन का धंधा आज धीरे-धीरे काफी जोर पकड़ चुका है। हालांकि ऐसा नहीं कि ट्यूशन का चलन अकस्मात हुआ है। अध्यापकों द्वारा बच्चों को निजी ट्यूशन देने का काम काफी पहले से किया जाता रहा है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से इसके चलन में काफी वृद्धि हुई है। दरअसल, पहले ट्यूशन शिक्षा के अंतर्गत एक विशेष सुविधा के रूप में होता था, पर समय के साथ यह एक अनिवार्य व्यवस्था का रूप लेती जा रही है। इस बात का प्रमाण 'राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान' (एनएसएसओ) की हाल में आई एक रिपोर्ट देखने से मिल जाता है।

एनएसएसओ की रिपोर्ट के अनुसार इस वक्त देश में निजी ट्यूशन ले रहे विद्यार्थियों की कुल संख्या लगभग 7.1 करोड़ है, जो कुल विद्यार्थियों की संख्या का छब्बीस प्रतिशत है। हालांकि यह सिर्फ सीमित आँकड़ों का अनुमानित विस्तार करके जुटाया गया आँकड़ा है, इसलिए विद्यार्थियों की यह संख्या और भी अधिक होने की संभावना है। इस रिपोर्ट में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह भी सामने आई है कि बच्चों को ट्यूशन भेजने में अब पारिवारिक पृष्ठभूमि का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया है। पहले यही होता था कि प्रायः संपन्न परिवार के ही बच्चे ट्यूशन लेते थे, मगर अब इस स्थिति में परिवर्तन आ गया है। संपन्न परिवार हो या गरीब परिवार, सब अपनी पूरी क्षमता के अनुसार अपने बच्चों को निजी ट्यूशन के लिए भेजने लगे हैं।

इस बात को इस आँकड़े के जरिए और अच्छे से समझा जा सकता है कि शहरी इलाकों में अड़तीस प्रतिशत संपन्न परिवारों के छात्र ट्यूशन जाते हैं, तो इनसे बहुत मामूली कमी के साथ गरीब परिवार के ट्यूशन जाने वाले बच्चों की संख्या तीस प्रतिशत है। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी जहाँ संपन्न परिवारों के पच्चीस प्रतिशत बच्चे ट्यूशन जाते हैं, वहीं गरीब परिवारों के भी सत्रह प्रतिशत बच्चे ट्यूशन का सहारा लेते हैं। यह अलग बात है कि संपन्न परिवार के बच्चे कथित तौर पर ज्यादा अच्छे ट्यूटर के पास जाते हैं, तो गरीब परिवार के बच्चे शायद थोड़े कम अच्छे ट्यूटर के पास। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि ट्यूशन लेने के प्रति संपन्न-विपन्न में अब कोई भेद नहीं रह गया है और सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने बच्चों को ट्यूशन भेजने लगे हैं।

ट्यूशन लेने वाले छात्रों में उच्च शिक्षा के छात्र कम हैं, अधिक छात्र स्कूली शिक्षा से संबंधित हैं। ट्यूशन के प्रति लोगों के इस आकर्षण का ही परिणाम है कि लोगों के घर खर्च में अब ट्यूशन का हिस्सा बढ़ कर बारह प्रतिशत हो गया है। लोगों में ट्यूशन के प्रति बढ़ रहे इस आकर्षण का स्वाभाविक रूप से अध्यापकों द्वारा लाभ लेने की कामयाब कोशिश की जा रही है। इसके लिए वे विभिन्न प्रकार के उपाय अपना रहे हैं। कहीं अध्यापक स्कूल के बाद निजी ट्यूशन कक्षा चला रहे हैं, तो कुछेक अध्यापक ऐसे भी हैं, जो घर-घर जाकर ट्यूशन देने को तैयार हैं। बहुत से अध्यापक बच्चों को कक्षा और विषय के अनुसार समूहों में विभाजित कर अपने घर बुला कर ट्यूशन देते हैं, तो कितने अध्यापक जिनकी विश्वसनीयता और साख थोड़ी स्थापित हो गई है, वे अपनी शर्तों- जैसे कि सप्ताह में दो या तीन दिन वे भी कोई एक विषय पढ़ाना और इसकी भी अत्यधिक फीस लेना आदि, पर ट्यूशन दे रहे हैं।

इनके अलावा और भी कई तरीके हैं, जिनके जरिए अध्यापकों द्वारा बच्चों को ट्यूशन दी जा रही है। अध्यापकों से इतर ऐसे भी कुछ लोग, जो किसी स्कूल आदि में नहीं पढ़ाते, कुछ अन्य कार्य करते हैं, वे भी अतिरिक्त समय में बच्चों को ट्यूशन देकर अच्छी-खासी आमदनी कर रहे हैं। साथ ही, खासकर ग्रामीण तबकों में ऐसे भी ट्यूटरों की भरमार मिलेगी, जिनकी शिक्षा बेहद सामान्य रही है और अपने समय में वे संभवतः

औसत विद्यार्थी ही रहे हैं, लेकिन लोगों में ट्यूशन के प्रति पनपे इस अति-आकर्षण का लाभ लेकर आज गुरुजी बन गए हैं। कुल मिलाकर तस्वीर यही है कि ट्यूशन को लेकर लोगों में आकर्षण बहुत बढ़ा है, जिसकी गवाही एनएसएसओ के उपर्युक्त आँकड़े तो देते ही हैं, जमीनी हालात देखने पर भी इसकी पुष्टि होती है।

अब सवाल है कि ट्यूशन को लेकर लोगों में इस आकर्षण के बढ़ने का कारण क्या है? इस संबंध में उल्लेखनीय होगा कि अपने बच्चों को ट्यूशन भेजने वाले अभिभावकों से जब एनएसएसओ ने सर्वेक्षण के दौरान यही सवाल पूछा तो उनमें नवासी प्रतिशत का कहना था कि अपने बच्चों को ट्यूशन भेज कर वे उनकी शैक्षिक बुनियाद मजबूत कर रहे हैं। इनमें बहुतों ने स्कूल के वृहद् पाठ्यक्रम के मद्देनजर ट्यूशन लेने को आवश्यक बताया, तो कई अभिभावकों का तो स्पष्ट रूप से यही कहना रहा कि स्कूली शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं होने के कारण उन्हें अपने बच्चों को ट्यूशन भेजना पड़ रहा है। यह देखते हुए समझना आसान है कि ट्यूशन के प्रति लोगों में बढ़ रहे आकर्षण का मुख्य कारण स्कूली शिक्षा पर से उनका विश्वास कमजोर होते जाना है।

इसी संदर्भ में अगर भारत की शिक्षा, खासकर प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर एक नजर डालें और यह पड़ताल करने का प्रयास करें कि क्या वाकई स्थिति इतनी खराब है कि लोगों का इस पर से विश्वास उठ रहा है और वे अपने बच्चों के लिए ट्यूशन का सहारा लेने लगे हैं। दरअसल, स्थिति खराब तो है ही और फिलवक्त देश की प्राथमिक शिक्षा अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। इनमें गुणवत्तायुक्त शिक्षा से लेकर ढाँचागत सुविधाओं तक हर स्तर पर समस्याएँ हैं। ढाँचागत सुविधाओं को एक बार के लिए छोड़ भी दें, तो गुणवत्तायुक्त शिक्षा के स्तर को कतई नजरंदाज नहीं किया जा सकता।

देश में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन की इस रिपोर्ट पर गौर करना उपयुक्त होगा, जिसके मुताबिक देश की कक्षा पाँच के आधे से अधिक बच्चे कक्षा दो की किताब ठीक से पढ़ने में असमर्थ हैं। ये तथ्य हमारी प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के सरकारी दावों के खोखलेपन को सामने लाने के लिए पर्याप्त हैं। विचार करें तो प्राथमिक या उच्च किसी भी शिक्षा में गुणवत्ता के लिए मुख्य रूप से दो बातें सर्वाधिक आवश्यक होती हैं- श्रेष्ठ और पर्याप्त शिक्षक और उत्तम पाठ्यक्रम। शिक्षकों की कमी की बात तो आये दिन उठती रहती है, पर इसके अलावा एक सवाल यह भी है कि जो शिक्षक हैं, क्या वे इतने योग्य और कुशल हैं कि बच्चों को समुचित रूप से शिक्षा दे पायें?

इस संबंध में तथ्य यही है कि शिक्षकों की कमी तो है, पर सरकारी स्कूलों में अधिक। निजी स्कूल इस समस्या से कम ग्रस्त हैं। अब रही बात उत्तम पाठ्यक्रम की, तो यहाँ भी सब कुछ ठीक नहीं दिखता। हालत यह है कि एक एल.के.जी. कक्षा का बच्चा जब स्कूल से निकलता है तो पीठ पर लादे बस्ते के बोझ के मारे उससे चला नहीं जाता। यह समस्या अंग्रेजी माध्यम या निजी स्कूल से शिक्षा प्राप्त कर रहे बच्चों के साथ कुछ अधिक है। अंग्रेजी माध्यम के पाठ्यक्रम पर नजर डालें तो उसमे के.जी. के बच्चों के लिए तैयार पाठ्यक्रम दूसरी-तीसरी कक्षा के बच्चों के पाठ्यक्रम जैसा है। उदाहरण के तौर पर देखें तो जिन बच्चों की बौद्धिक क्षमता गिनती-पहाड़ा आदि सीखने की है, उनके लिए जोड़-घटाना सिखाने वाला पाठ्यक्रम तैयार किया गया है।

ऐसे पाठ्यक्रम से यह उम्मीद बेमानी है कि बच्चे कुछ नया जानेंगे, बल्कि सही मायने में तो ऐसे पाठ्यक्रम के बोझ तले दब कर बच्चे पढ़ी चीजें भी भूल जाएँगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकारी स्कूल जहाँ कम शिक्षकों की समस्या से जूझ रहे हैं, वहीं निजी विद्यालय अनुचित पाठ्यक्रम चला रहे हैं। बच्चे पढ़ें तो कैसे और क्या पढ़ें?

निश्चित ही इन समस्याओं के मद्देनजर आज अभिभावकों का स्कूली शिक्षा से विश्वास डगमगाने लगा है और वे ट्यूशन की शरण ले रहे हैं। लेकिन उन्हें कौन समझाए कि ट्यूशन में भी सब कुछ अच्छा नहीं है। ट्यूशन के प्रति उनके इस अंधोत्साह का काफी अयोग्य शिक्षकों द्वारा अनुचित लाभ भी लिया जा रहा है। एक उदाहरण दृष्टव्य है कि गली-गली, खासकर शहरी इलाकों में खुले छोटे-छोटे निजी स्कूलों में पढ़ाने वाले तमाम शिक्षक-शिक्षिकाओं द्वारा स्कूल से छूटते ही सीधे वहीं से बच्चों को अपने घर लाकर निजी ट्यूशन के नाम पर एक साथ चालीस-पचास बच्चों तक को ट्यूशन देने का चलन खूब देखने को मिल रहा है।

परीक्षा में ये शिक्षक-शिक्षिकाएँ स्कूल में मौजूद रहते हैं, तो अपने पास पढ़ने वाले बच्चों की सहायता कर देते हैं, जिससे उनके नंबर अच्छे आ जाते हैं और अभिभावक यह मान लेते हैं कि उनका बच्चा ट्यूशन के कारण पढ़ने में तेज हो रहा है, जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। यह एक उदाहरण है, ऐसी ही और भी तमाम विसंगतियाँ ट्यूशन में मौजूद हैं। अब इन सब स्थितियों के मद्देनजर यही कह सकते हैं कि देश की स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने की तरफ सरकार को गंभीरता से ध्यान देना चाहिए, जिसमें ऊपरी टीप-टाप से अधिक ध्यान शिक्षा की गुणवत्ता पर केंद्रित हो।

इसके अलावा शिक्षित अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को अंधोत्साह में ट्यूशन भेजने के बजाय अगर खुद समय निकाल कर नियमित रूप से उन्हें पढ़ाएँ तो वे बच्चे ट्यूशन ले रहे बच्चों की अपेक्षा अधिक सुशिक्षित होंगे।❑

(स्वतन्त्र लेखक)

पढ़ाई की पोल

❑ रामप्रकाश कुशवाहा

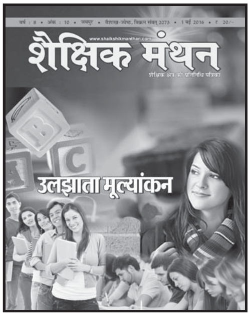

कुछ वर्ष पहले एक विदेशी ने बातचीत में पूछा कि मैं कितने विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ। मेरे सामने समस्या उत्पन्न हो गई कि मुझे वास्तविक तथ्य बताना चाहिए या नहीं! अगर मैं उससे यह कहता कि अकेले पाँच सौ छात्र-छात्राओं को पढ़ाता हूँ, तो यह उसके लिए जितना अविश्वसनीय होता, राष्ट्रीय छवि के लिए उतना ही शर्मनाक भी। मैंने एक कल्पित संख्या बताई और विषयांतर कर उसके पास से खिसक लिया।

निजी विद्यालयों में संभव है कि सिर्फ सेवानिवृत्ति या शिक्षक की असामयिक मृत्यु की स्थिति में कोई पद रिक्त हो, लेकिन शासकीय विद्यालयों-महाविद्यालयों में कभी भी कोई पद स्थानांतरण से रिक्त हो सकता है। ऐसे में पाँच सौ विद्यार्थियों का एकल शिक्षक होना भारतीय संदर्भों में स्वाभाविक घटना है। मगर इसके शर्मनाक लगने का कारण यह था कि खुद मेरी शिक्षा केंद्रीय विश्वविद्यालय के जिस विभाग से हुई थी, वहाँ तीस-पैंतीस शिक्षक थे। मुझे अपनी बेहतर शिक्षा-सुविधाओं पर गर्व हुआ, पर उस शैक्षणिक कुपोषण की ओर भी ध्यान गया, जिसके शिकार मेरी शिक्षण-संस्था के विद्यार्थी थे।

जरूरी नहीं कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यालयों-महाविद्यालयों में समान परिस्थितियाँ हों। बड़े महानगरों के शिक्षण संस्थानों में राजनीतिक प्रभाव वाले सूत्रधारक शिक्षकों का भारी जमावड़ा देखा जा सकता है। महिला सशक्तीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के कारण यह भी संभव है कि महिला विद्यालयों में पुरुष शिक्षकों की संख्या अधिक हो और महिला शिक्षकों की कम, क्योंकि अब रुचि की प्राथमिकताएँ बदल चुकी हैं और निजी सुविधाएँ-असुविधाएँ अधिक प्राथमिक हो गई हैं। सच तो यह है कि समवर्ती सूची में होने के बावजूद अधिकतर राज्य सरकारों के लिए उनके शिक्षा-केंद्र और उनमें तैनात शिक्षक मात्र कंप्यूटर में दर्ज आँकड़े या फिर लोहे की सुरक्षित आलमारियों में बंद फाइलें हैं। पदोन्नति के परंपरागत विधान के अनुसार सबसे बूढ़ा अधिकारी वहाँ अपने बचे हुए दिन गिनते हुए थका-ऊबा पहुँचता है और अपनी सेवानिवृत्ति के दिन गिनता और अपनी पेंशन के कागज तैयार करवाता हुआ तंत्र-मुक्त होता जाता है।

छात्र-छात्राओं की एक बड़ी संख्या शिक्षकों की नई तैनाती की प्रतीक्षा करती हुई आगामी परीक्षा की तैयारियों में लग जाती है। सरकारों के लिए स्थानीय स्तर पर वैकल्पिक नियुक्ति का निर्देश जारी करना इसलिए भी मुश्किल है कि एक सीमा के बाद विभिन्न

जरूरी नहीं कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यालयों-महाविद्यालयों में समान परिस्थितियाँ हों। बड़े महानगरों के शिक्षण संस्थानों में राजनीतिक प्रभाव वाले सूत्रधारक शिक्षकों का भारी जमावड़ा देखा जा सकता है। महिला सशक्तीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के कारण यह भी संभव है कि महिला विद्यालयों में पुरुष शिक्षकों की संख्या अधिक हो और महिला शिक्षकों की कम, क्योंकि अब रुचि की प्राथमिकताएँ बदल चुकी हैं और निजी सुविधाएँ-असुविधाएँ अधिक प्राथमिक हो गई हैं। सच तो यह है कि समवर्ती सूची में होने के बावजूद अधिकतर राज्य सरकारों के लिए उनके शिक्षा-केंद्र और उनमें तैनात शिक्षक मात्र कंप्यूटर में दर्ज आँकड़े या फिर लोहे की सुरक्षित आलमारियों में बंद फाइलें हैं।

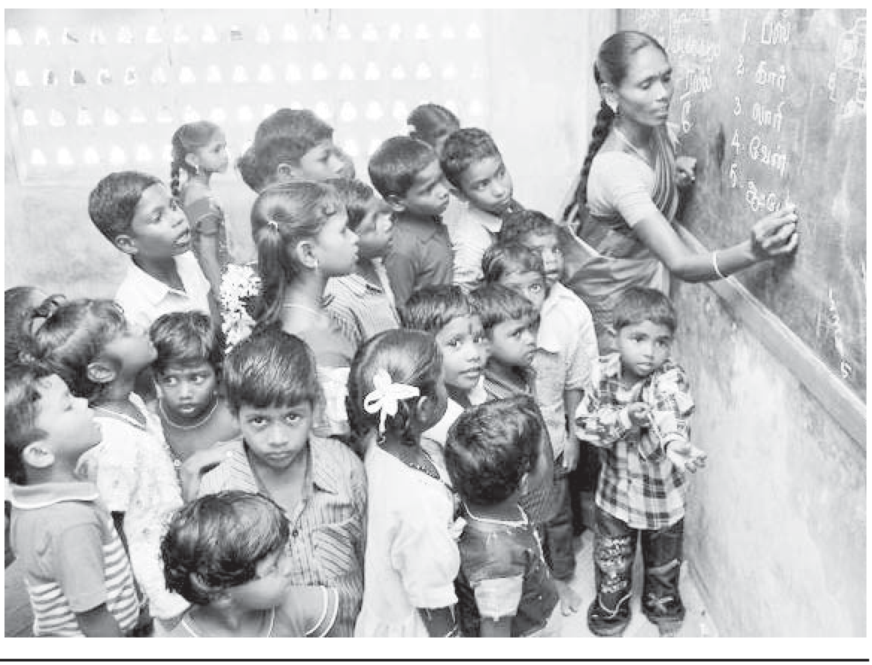

कानूनों का साक्ष्य देकर किसी की नियुक्ति को स्थायी करने या न करने का अधिकार अधिवक्ताओं के हाथ में चला जाता है। विद्यार्थी शिक्षकों के रिक्त पदों के लिए व्यवस्था को कोसते हुए एकलव्य बने लक्ष्य-संधान करते हुए आगे निकल जाते हैं। आज मुद्रित सामग्री के युग में वाचिक परंपरा के गुरु का महत्त्व वैसे भी कम होता जा रहा है। गुरु गोविंद सिंह ने तो इस सच्चाई को बहुत पहले जान लिया था। गुरु पद का उत्तराधिकार गुरु ग्रंथ साहब को उन्होंने खूब सोच-समझ कर सौंपा था।

इस शासकीय अधिसूचना के बावजूद कि कक्षाओं में विद्यार्थियों की उपस्थति सुनिश्चित की जाए- ऐसे भी प्रवेशार्थी मिलते हैं, जो सबसे पहले यही पूछते हैं कि रोज कक्षाएँ करने की अपरिहार्यता तो नहीं रहेगी? पढ़ने के बाद भी बेरोजगारी की संभावना को देखते हुए वे शिक्षा प्राप्त करने की लागत को कम करना चाहते हैं। विद्यालयों में विद्यार्थियों की कम उपस्थिति का एक कारण यह भी है कि अभिभावक और विद्यार्थी दोनों ही घर से महाविद्यालय की दूरी और उसमें लगने वाला समय और किराया देखते हैं। छात्राएँ कानून-व्यवस्था की स्थिति और रास्ते में पड़ने वाले असुरक्षित स्थलों, उनसे संभावित खतरों और जोखिम का आकलन करेंगी। अगर विद्यालय या महाविद्यालय में संबंधित विषयों के शिक्षक कम या बिल्कुल नहीं हुए तो फिर विद्यार्थी कक्षा में मिलने वाली शिक्षा की गुणवत्ता का मूल्यांकन करेगा। वह स्वाध्याय पर बल देगा या फिर कक्षा के स्थान पर पुस्तकालय में समय बिताना अधिक उपयोगी समझेगा।

पाठ्य सामग्री, मुद्रित नोट्स, कुंजी, गाइड और श्योर सीरीज का एक बड़ा वैकल्पिक बाजार विद्यार्थियों को लुभाता और आश्वस्त करता रहता है। कभी-कभी सटीक खुफियागीरी या फिर भारी लेन-देन के बाद परीक्षा में सहायक सामग्री बाजार में उतारी जाती है। विश्वविद्यालयों के छोटे से या बंद तंत्र में गुपचुप इस तरह का भ्रष्टाचार संभव होता है। कई बार अन्य शिक्षकों के अनुभवजन्य सटीक पूर्वानुमान ऐसे धंधे को विश्वसनीय बना देते हैं। इसमें शिक्षकों की आर्थिक महत्त्वाकाँक्षा भी शामिल रहती है, जिसके कारण वे खुद ट्यूशन और कोचिंग आदि करवाने के लिए विद्यार्थियों पर दबाव बनाते हैं। क्योंकि कोचिंग का धंधा भी बाजार की कड़ी प्रतिस्पर्धा से होकर गुजरता है। भ्रष्ट नियुक्तियों की संभावना को देखते हुए किसी संस्थान के शिक्षक को अयोग्य नहीं, तो कमतर होने की संभावना भी है। शिक्षा का बाजार भी उसे अधिक प्रतिस्पर्धी, नवीन और सुविधाजनक बनाता है, तो उसे बुरा भी नहीं कहा जा सकता। ❑

MSVSS Annual General Body Meeting held at Baroda

The meeting of MSVSS was held on 12/04/2016, as per agenda. Around 250 teacher members were present at he AGM. Dignitaries invited to grace the AGM and address the function were, Shri Keshubhai Thakkar, Varishth Swayamsevak and Ex. Vice President BMS, India. Shri Mahendra Kapoor, Secretary-Organization, ABRSM Delhi. Prof. PragneshB.Shah, Secretary Higher Education, ABRSM Delhi. Syndics and Senate Members of The M. S University of Baroda.

Special invitee and speaker on the occasion was Shri Keshubhai Thakkarenthusiastic and young at the age of 92 years, Ex Vice President Bhartiya Majdoor Sangh, India. He is a Varishth Swaymsevak of RSS since 1936. He his views and insights on Nationalism and present scenario. His inputs to teacher as a nation builders was remarkable and also pinching the audience to motivate them to work for the cause against all odds. He created an environment of positivity by discussing the importance and scientific discoveries related to the Cultural Symbols of SWASTIK, AUM, etc. which are built in the culture of Hinduism.

He shared his views on business- economics and Indian ancient practices of different advanced technologies, like metal manufacturing.

General Secretary, Dr. SatyajeetChaudhari, reported the activities of MSVSS, for the period of past 3 years 2013 to 2016, notable among this was the appreciation of the summer camp for the kids of staff (Peon to Professor)of The M. S. University of Baroda. Which has set an example as a "samajiksamrasta"and also recognized and appreciated at the ABRSM RashtriyaAdhiveshan at Nagpur.

President, Dr. Biswajit Chakraborty, addressed the audience and expressed his gratitude to the MSVSS executives and office bearer for their hard work and constant cooperation in all the activities during past three years. He called the election officer for declaring the body of MSVSS office bearers and executive committee members.

President – Prof. Ranjan Senguta, Vice President (4 Posts), Prof. Jagdish Solanki, Prof. HariKataria, Dr. Shweta Prajapati, (Women Wing), Dr. Avani Maniyar, General Secretary – Prof. Gaurang Bhavsar, Secretary (6 Posts) Shri Chetan Somani, (Organization), Shri Jiva Kuchhadiya, c.Mrs. Sheetal Shinkhede, (Women Wing), Dr. Bharat Pandya, Dr. Rajeshri Trivedi, Dr. Jyoti Achanta, Treasurer – Dr. Dipendra Jadeja, Joint Treasurer- Shri. Kamlesh Vala, The program was followed by dinner.

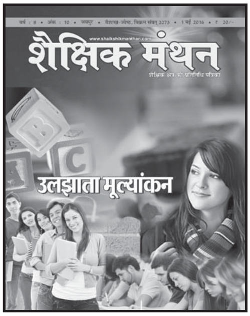

अध्यापक से ऊपर के लोग सब कुछ अध्यापकों पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं। नीति बनाने वाले लोग विद्यालय का मुँह देखे बिना यहाँ वहाँ से लाई हुई बातें थोप कर अपने कर्मों की इतिश्री कर लेते हैं। माता-पिता भारत में कभी इतने जागरूक हुए ही नहीं कि वे शिक्षा की प्रक्रिया पर ध्यान दें। छात्र जहाँ तक संभव हो सके मेहनत करने से बचने की कोशिश करते हैं। ऐसे में गणित के कठिन प्रश्नों पर शोर मचा लेना और सीबीएसई द्वारा जाँच में ढ़िलाई बरतना खुश करने के बजाय एक खतरनाक स्थिति की ओर संकेत करती है, जहाँ हम छात्रों को तैयार करने के बजाय क्षणिक हल निकालने की कोशिश करते हैं।

कठिन प्रश्नों की जड़ें

❑ **आलोक रंजन**

परीक्षाओं के इस मौसम में एक नया रुझान देखने को मिल रहा है। अध्यापक, माता-पिता, प्राचार्य और मीडिया के लोग परीक्षा भवन से बाहर आ रहे छात्रों की मुस्कान की चौड़ाई से, उनकी आँखों की लाली और उनमें बसे पानी की मात्रा से छात्र के प्रदर्शन को जाँचने लगे हैं। अगर बच्चा हँस नहीं रहा है तो परीक्षा कठिन हुई होगी, आँखें लाल हैं तो भी वही हुआ होगा और बाहर आते ही रोने वाले छात्रों के बारे में तो कहना ही क्या! हाल के दिनों में जब से छात्र परीक्षा परिणाम के डर से आत्महत्या करने लगे हैं, तब से परीक्षा के प्रश्नपत्र भी खबर की हैसियत रखने लगे हैं।

ये स्थितियाँ देख कर खुशी होती है कि अध्ययन-अध्यापन के जितने भी सहभागी हैं वे और मीडिया सब सचेत हो रहे हैं। वे कम से कम परीक्षा को तवज्जो जरूर देने लगे हैं। खुशी की बात यह भी है कि अब परीक्षा के दिनों में छात्र अकेला नहीं होता। शिक्षा के लिए यह एक खुशखबरी है। बहुत पीछे जाने की जरूरत नहीं है, जब परीक्षा के दिन केवल छात्रों से संबंधित होते हैं। छात्रों को प्रवेश पत्र मिल गया, उन्होंने तैयारी कर ही ली होगी फिर वे अब पढ़ें और परीक्षा दें। माता-पिता या अभिभावक अखबार से परीक्षा की समय सारिणी काट कर देने और थोड़े से जेब खर्च देने को ही अपना सबसे मूल कर्तव्य मानते थे और उसका निर्वाह कर उन्हें गर्व भी होता था। उस लिहाज से आज की स्थिति वाकई खुश करने वाली है कि छात्र की भावनाओं को समझने के लिए उसके आसपास लोगों से लेकर संस्थान तक मौजूद रहने लगे हैं। लेकिन क्या यह सच में खुश होने का क्षण है?

एक अध्यापक के रूप में मुझे ग्यारहवीं में आने वाले छात्रों को पुराने तौर-तरीकों से निकालने में ही काफी समय लग जाता है। उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता कि ग्यारहवीं में पहले पाठ के आधार पर साल के अंत में भी प्रश्न आयेंगे। नीचे की कक्षाओं में उनकी जो आदत लगी है उस हिसाब से पहला फारमेटिव असेसमेंट यानी एफ.ए. होते ही ज्ञान का वह भाग उनके लिए निरर्थक हो जाता है। इसलिए वे उसे अपने जेहन से निकाल देने में नहीं हिचकते। मैं दसवीं को भी पढ़ाता हूँ, तो वहाँ एफ. ए. एक का कोई संदर्भ अगर दूसरे एफ.ए. में आता है, तो कई बार छात्रों को मुँह ताकते देखा है। कुछ तो

खुल के कह देते हैं कि अमुक संदर्भ बीते हुए एफ.ए. का था, इसलिए हमें नहीं पता।

अब थोड़ी-सी बात प्रश्नपत्रों पर। बाहर से आने वाले दसवीं तक के प्रश्नपत्र आवश्यक रूप से बड़े ही सरल होते हैं। उदाहरण के तौर पर अपठित गद्यांश के प्रश्न को लेते हैं। गद्यांश में बताया जाता है कि 'महात्मा गाँधी का जन्म पोरबंदर में हुआ था'। नीचे प्रश्न होता है- महात्मा गाँधी का जन्म कहाँ हुआ था। भाषा साहित्य के व्याकरण के प्रश्न छठी से लेकर दसवीं तक लगभग एक समान होते हैं। लेकिन बारहवीं के प्रश्न अचानक से काफी गहरे पूछ लिए जाते हैं। जिन छात्रों को आदत लगी है आसान प्रश्न करने की वे थोड़े से घुमावदार प्रश्न देखते ही चिंतित होने लगते हैं। एक-दो घुमावदार प्रश्न उनके पूरे आत्मविश्वास को हिलाने के लिए काफी होते हैं। फिर वे परीक्षा भवन से रोते हुए आयें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ऊपर कही गई बातें कोई नई नहीं हैं। दसवीं से लेकर बारहवीं तक को पढ़ाने वाला कोई भी अध्यापक इस पर लंबी बात कर सकता है। हर वर्ष साँप के गुजर जाने पर लकीर पीटी जाती है। शिक्षा के मामले में तो यह लकीर पीटने जैसी बात भी नहीं है। मीडिया के लिए कठिन प्रश्नपत्र एक सनसनी है, लेकिन पूरी प्रक्रिया कभी भी उसकी चिंता का विषय नहीं रही है। अध्यापक से ऊपर के लोग सब कुछ अध्यापकों पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं। नीति बनाने वाले लोग विद्यालय का मुँह देखे बिना यहाँ वहाँ से लाई हुई बातें थोप कर अपने कर्मों की इतिश्री कर लेते हैं। माता-पिता भारत में कभी इतने जागरूक हुए ही नहीं कि वे शिक्षा की प्रक्रिया पर ध्यान दें। छात्र जहाँ तक संभव हो सके मेहनत करने से बचने की कोशिश करते हैं। ऐसे में गणित के कठिन प्रश्नों पर शोर मचा लेना और सीबीएसई द्वारा जाँच में ढ़िलाई बरतना खुश करने के बजाय एक खतरनाक स्थिति की ओर संकेत करती है, जहाँ हम छात्रों को तैयार करने के बजाय क्षणिक हल निकालने की कोशिश करते हैं। ❑

रुक्टा (राष्ट्रीय)
अम्बेड़कर जयंती पर विभिन्न आयोजन

रुक्टा (राष्ट्रीय)की विभिन्न इकाइयों ने 14 अप्रेल 2016 को बाबा साहब अम्बेड़कर की 125 वीं जयंती पर संगोष्ठी एवं सार्वजनिक स्थानों पर स्थापित बाबा साहब की मूर्ति पर माल्यार्पण कर अम्बेड़कर जयंती मनाई। अजमेर विभाग की इकाइयों की संयुक्त संगोष्ठी पूर्व प्राचार्य प्रो. शेरसिंह दोचाणिया के मुख्य आतिथ्य में सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय में आयोजित की गई। संगोष्ठी में प्रदेश महामंत्री ने बाबा साहब के विचारों की प्रासंगिकता एवं समाज कल्याण के उनके प्रयासों पर प्रकाश डाला। संगोष्ठी की अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. दीपकराज मेहरोत्रा ने की। संगोष्ठी में अजमेर, कन्या अजमेर, नसीराबाद, पुष्कर, ब्यावर व किशनगढ़ महाविद्यालयों के शिक्षकों ने भाग लिया।

अलवर की समस्त इकाइयों ने 14 अप्रेल को कार्यक्रम आयोजित किया जिसमें बाबा साहब की मूर्ति पर माल्यार्पण पश्चात एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। जिसमें पूर्व प्राचार्य प्रो. घनश्यामलाल ने डॉ. अम्बेड़कर के जीवन से जुड़े प्रेरक प्रसंगों के द्वारा बाबा साहब की कर्त्तव्य निष्ठा एवं सामाजिक समरसता को अपनाने का आह्वान किया।

राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में बाबा साहब के जीवन दर्शन एवं सामाजिक समरसता विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गयी जिसमें मुख्य वक्ता प्रो. सरवणसिंह ने विचार व्यक्त किये। राजकीय कन्या महाविद्यालय झुंझुनु में महाविद्यालय प्राचार्य की अध्यक्षता में संगोष्ठी आयोजित की गई। जिसमें प्रो. हीरालाल मील सहित अन्य शिक्षकों ने विचार व्यक्त किये।

राष्ट्रविरोधी गतिविधियों पर कार्यवाही हेतु हस्ताक्षर अभियान

पिछले दिनों में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली तथा जाधवपुर विश्वविद्यालय, कोलकता सहित देश के अनेक विशिष्ट शिक्षा केन्द्रों में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर राष्ट्रविरोधी घटनाओं से सम्पूर्ण देश उद्वेलित हुआ। केन्द्र के आह्वान् पर राज्य की समस्त रुक्टा (राष्ट्रीय) इकाइयों से लगभग 4000 से अधिक शिक्षकों के हस्ताक्षरित ज्ञापन को माननीय राष्ट्रपति जी के नाम भेजा गया। इन ज्ञापनों के द्वारा संगठन ने माननीय राष्ट्रपति जी से कतिपय संगठनों द्वारा अपने हित साधने के लिए शिक्षा मंदिरों के दुरुपयोग रोकने हेतु हस्तक्षेप करने का आग्रह किया गया तथा इस तरह की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने हेतु निवेदन किया गया।

परवरिश का परिवेश

❑ चैतन्य नागर

आज के जो हालात हैं, उनमें माँ का यह सवाल बेतुका-सा हो चुका है कि स्कूल कैसा लगा! मरे हुए शब्दों का बोझ जब तक बेटी पँखों से झटक कर एक ओर नहीं रख देगी, किसी सवाल का जवाब भी कैसे देगी बिटिया! जबकि उस बोझ को झटक देने में ही है माँ के सवाल का जवाब। यह विडंबना है कि अधिकतर मामलों में स्कूल और खुशी का कोई रिश्ता ही नहीं। 'कैसा रहा स्कूल', इस सवाल के जवाब में छिपी है हमारे समय की एक बड़ी त्रासदी।

क्या शिक्षा सिर्फ एक आवश्यक बुराई बन कर रह गई है? ऑस्ट्रियन चिंतक ईवान इलिच (1926-2002) की मशहूर किताब 'डी स्कूलिंग सोसायटी' का मुख्य तर्क ही यह है कि अब समूचे समाज को स्कूलों से मुक्त करने की जरूरत है, क्योंकि मौजूदा व्यवस्था शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रही। इलिच कहते हैं- 'स्कूली शिक्षा इस भ्रम पर आधारित है कि हर तरह की सीख शिक्षा का ही परिणाम है। यह सही है कि कुछ चीजें शिक्षा के माध्यम से सीखी जा सकती हैं, पर ज्यादातर सीख स्कूलों से बाहर ही संभव होती है। स्कूल तो अधिकतर देशों में ऐसी जगह बन चुके हैं, जहाँ बच्चों को उनकी जिंदगी की एक लंबी अवधि के दौरान कैद में रखा जाता है।'

इस देश में तो अधिकतर गाँवों और यहाँ तक छोटे-बड़े शहरों में भी शिक्षा 'गूमड़ युग' से बाहर कदम नहीं निकाल पाई है। पढ़ाई के दौरान शारीरिक हिंसा के परिणामस्वरूप बच्चों के सिर पर उगे गूमड़ों की संख्या के आधार पर शिक्षा की गुणवत्ता का आकलन होता है! बच्चे की बेरहमी से पिटाई, स्कूल में पाँच-छह साल की बच्ची के साथ बलात्कार, होमवर्क न करने पर बच्चों को कड़ी धूप में खड़ा किया- इस तरह की खबरें हमारी सामूहिक चेतना के सामने इतनी बार कौंधती हैं कि अब वे अपना तीखापन, दंश, पीड़ा खो चुकी हैं!

बच्चों की शिक्षा संवेदनशील मुद्दा है और इसे बस शिक्षाविदों और समाजशास्त्रियों के लिए नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। हमारे अपने जीवन के साथ जो चीजें गहराई से जुड़ी हैं, उनके बारे में जानने के लिए भी हम विशेषज्ञों के पास जाते हैं। ऐसी कोई विधा नहीं जो जीवन को समग्रता से, उसकी संपूर्णता में देखना सिखाये; जो समूचे कैनवास को सामने रख दे और जिंदगी के सुख-दुख, पीड़ा, हास्य, प्रेम, करुणा, नफरत, युद्ध, कुदरत के साथ हमारे रिश्ते, जिंदगी के सभी रंगों को एक साथ हमारी मेज पर रख दे और कहे- 'यह रहा आपका जीवन, देखिए

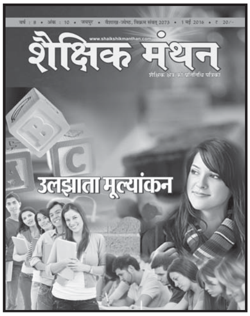

जिन्हें हम शिक्षक कहते हैं, वास्तव में वे बस प्रशिक्षक भर होते हैं- जीविका के संकीर्ण कोने में सिमटे हुए, जीवन के असीमित क्षेत्र से अनभिज्ञ और बेपरवाह। जे. कृष्णमूर्ति ने ऐसी शिक्षा के बारे में कहा है कि यह 'कोने के पुजारियों' (वरशिपर्स ऑफ द कॉर्नर) को जन्म देती है। यानी मौजूदा शिक्षा हमें सिर्फ जीवन के एक सीमित क्षेत्र से परिचित कराती हैं। जीवन की समग्रता को समझने का कोई आग्रह भी यह पैदा नहीं करती हमारे भीतर। अनावश्यक भेड़िया धसान में शामिल हुए बिना भी उत्कृष्टता कैसे प्राप्त की जा सकती है और आधुनिक जीवन की क्रूर माँगों के सामने टूटे बगैर कैसे सीमित संसाधनों के साथ जीवन को हँसी-खुशी जिया जा सकता है।

इसे और समझिए।

चलिए इसे समझने के लिए एक सहयात्रा में उतरा जाये, एक दूसरे के हाथ थाम कर। खुद से, जिंदगी से रूबरू हुआ जाये। स्कूलों में विषय तो पढ़ा दिए जाते हैं जैसे-तैसे, पर जीवन का विराट क्षेत्र, अपनी तमाम जटिलताओं और सरलताओं के साथ अछूता रह जाता है। जिन्हें हम शिक्षक कहते हैं, वास्तव में वे बस प्रशिक्षक भर होते हैं- जीविका के संकीर्ण कोने में सिमटे हुए, जीवन के असीमित क्षेत्र से अनभिज्ञ और बेपरवाह। जे. कृष्णमूर्ति ने ऐसी शिक्षा के बारे में कहा है कि यह 'कोने के पुजारियों' (वरशिपर्स ऑफ द कॉर्नर) को जन्म देती है। यानी मौजूदा शिक्षा हमें सिर्फ जीवन के एक सीमित क्षेत्र से परिचित कराती हैं। जीवन की समग्रता को समझने का कोई आग्रह भी यह पैदा नहीं करती हमारे भीतर।

कोटा में बच्चों की आत्महत्या की घटनाएँ इसके उदाहरण हैं। अनावश्यक भेड़ियाधसान में शामिल हुए बिना भी उत्कृष्टता कैसे प्राप्त की जा सकती है और आधुनिक जीवन की क्रूर माँगों के सामने टूटे बगैर कैसे सीमित संसाधनों के साथ जीवन को हँसी-खुशी जिया जा सकता है, बच्चों को यह समझाए बगैर उन्हें सिर्फ सफलता और संसाधन बटोरने की रुग्ण जीवन-शैली जीने के गुर सिखाए जाते हैं। यह हिंसा और क्रूर प्रतिद्वंद्विता को जन्म देता है।

हमारी समूची शिक्षा का आधार है- इनाम, सजा और तुलना। घर में माँ-बाप और स्कूल में शिक्षक यही तरीका अपनाते हैं बच्चों को पढ़ाने के लिए। 'पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे-कूदोगे होगे खराब' सदियों से बच्चों को कहा जाता रहा है। इम्तहान में अच्छे नंबर लाने पर इनाम, नहीं तो अपमान या सजा। कैसा लगता है जब अखबारों में पढ़ते हैं कि किसी बारह या पंद्रह वर्ष के बच्चे ने कम नंबर आने की वजह से खुदकुशी कर ली? एक भी बच्चा ऐसा करता है तो उसका कलंक हम सबके माथे लगता है, क्योंकि हमने एक ऐसा माहौल बनाया है जिसमें कामयाबी की पूजा की जाती है। हमारे घरों में बातें होती हैं कि 'देखा, क्या शानदार निकला है उसका बेटा! महीने में दस लाख तो कहीं नहीं गया!' बच्चा हर समय दबाव में रहता है। सजा, इनाम, तुलना और भय- बस यही सड़े-गले पुराने तरीके हैं हमारे पास बच्चों की परवरिश के लिए। हम इस बात के लिए न धैर्य रखते हैं और न बच्चे को समय देते हैं कि वह वास्तव में पता लगा सके कि उसे क्या करना पसंद है, अपने दिल से। ❑

ऑल जम्मू कश्मीर एण्ड लद्दाख टीचर्स फैडरेशन की प्रान्त बैठक जम्मू में सम्पन्न

आल जम्मू कश्मीर एण्ड लद्दाख टीचर्स फैडरेशन सम्बद्ध अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की प्रांत बैठक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर की उपस्थिति में 19 अप्रैल 2016 को जम्मू में सम्पन हुई। दिनभर चली इस बैठक में शिक्षकों की समस्याओं पर गंभीरता से विचार विमर्श हुआ । इसमें उपस्थित सभी शिक्षकों ने पाठ्यक्रम को बदलने और नई शिक्षानीति लाने पर जोर दिया। बैठक में निश्चित हुआ कि वार्षिक सदस्यता अभियान 1 मई से 31 मई 2016 के बीच रहेगा। प्रांत स्तरीय महासम्मेलन 13 जून 2016 को जम्मू में होगा। इसमें प्रांत भर से महासंघ के प्रांत, जिला व तहसील स्तर के पदाधिकारी, शिक्षक, प्रांत के प्रबुद्ध नागरिक, शिक्षाविद् हिस्सा लेंगे। दो दिवसीय प्रांत स्तरीय अभ्यास वर्ग 8 व 9 जुलाई 2016 को पटनी टॉप में होना निश्चित होगा। इसमें प्रांत व सभी जिला के पदाधिकारी और जोन स्तर से अध्यक्ष व मंत्री अपेक्षित हैं। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गुरुवन्दन कार्यक्रम को प्रांत स्तर, सभी जिला स्तर व तहसील स्तर पर होंगे।

बैठक के अंत में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। अपने संबोधन में उन्होंने शिक्षकों को सच्ची निष्ठा व लगन से कार्य करने के लिए प्रेरित किया ताकि भारत को एक बार फिर विश्व गुरु के पद पर स्थापित किया जा सके। इस बैठक में प्रदेश कार्यअध्यक्ष महेश्वर प्रसाद, प्रदेश महामंत्री रतन शर्मा व 6 जिलों और तहसील स्तर के पदाधिकारी उपस्थित थे ।

सौराष्ट्र संभाग की बैठक भावनगर में सम्पन्न

सौराष्ट्र संभाग (गुजरात) की बैठक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर के मुख्य आतिथ्य एवं भाविन भाई सौराष्ट्र संभाग की अध्यक्षता में 10 अप्रैल 2016 को भावनगर में आयोजित हुई। इस अवसर पर संभाग के कार्यकर्ताओं को दिशा बोध कराने की दृष्टि से 3 सत्र आयोजित किए गए। प्रथम सत्र में शैक्षिक महासंघ के उद्देश्य पर राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर ने विस्तार से प्रकाश डाला।

द्वितीय सत्र में राष्ट्रीय सचिव श्री मोहन पुरोहित ने कार्यविस्तार पर चर्चा की तथा तृतीय सत्र में राष्ट्रीय सचिव उच्च शिक्षा डॉ प्रगनेश शाह ने मिडिया प्रबंधन पर विस्तृत चर्चा की।

समारोप सत्र में राष्ट्रीय सचिव श्री मोहन पुरोहित ने बताया कि कार्यकर्ता संगठन की आत्मा है और संगठन विस्तार जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। जिस प्रकार से हम परिवार के सदस्यों की चिंता करते हैं उसी प्रकार संगठन की चिंता करेंगे तो हम अच्छा कर पाएँगे।

उद्घाटन सत्र में भावनगर विभाग प्रचारक, महानगर संघचालक, सह विभाग कार्यवाह (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) भी उपस्थित रहे।

प्रयास सही, नतीजे नहीं

❑ पी. पुष्कर

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अप्रैल के प्रारंभ में विश्वविद्यालयों व कॉलेजों पर अखिल भारतीय रैंकिंग 2016 जारी की है। सरकार की ओर से रैंकिंग जारी करने का यह पहला प्रयास है। इस पहल के साथ ही सरकार द्वारा अब प्रतिवर्ष जारी किए जाने वाले इस दस्तावेज की तुलना स्वत: ही कॉलेजों में दाखिले के लिए सत्र की शुरुआत से पहले समाचार पत्रिकाओं में जारी रैंकिंग से की जा सकेगी। लेकिन, सवाल उठता है कि क्या छात्रों और अभिभावकों को पढ़ाई के लिए विषय या संस्थान चुनने जैसा अहम निर्णय लेते वक्त ऐसी रैंकिंग पर विचार करना चाहिए।

इसका छोटा सा जवाब है, उन्हें पूरी तरह से इन पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। मोटे तौर पर कुछ बिन्दु ऐसे हैं जिनका ध्यान भी दाखिले के लिए संस्थान का चयन करते समय रखा जाना चाहिए। महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों की रैंकिंग की उपयोगिता के आकलन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक मापदंड उनकी विश्वसनीयता है। सवाल यह भी उठता है कि रैंकिंग करती आई विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और अब सरकार ने रैंकिंग के लिए इस विश्वसनीयता परीक्षण किया है। किसी भी रैंकिंग प्रणाली के संस्थानों के पास उपलब्ध आँकड़े और उन आँकड़ों की व्याख्या करने के लिए अपनाया गया तरीका ही अहम घटक होते हैं। इन दोनों की अपनी सीमाएँ हैं और कोई भी रैंकिंग प्रणाली इन दोनों की कसौटी पर पूरी तरह खरी नहीं उतरती, भले ही वे क्वाक्वैरली सिमंड्स (क्यूएस) तथा टाइम्स हायर एजुकेशन (टीएचई) जैसी अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग संस्थाएँ ही क्यों न हों। इसलिए इनकी सार्थकता पर सवाल उठना लाजिमी है।

आँकड़ों की बाध्यता

भारतीय रैंकिंग की भूमिका में भविष्य में 'ईमानदार' और 'विश्वसनीय' आँकड़ों की ओर अधिक गहराई से ध्यान देने और रैंकिंग तंत्र में मौजूदा खामियों को स्वीकार करने की जरूरत है। जानकारी में सामने आया है कि आँकड़ों की उपलब्धता के आधार पर रैंकिंग की विश्वसनीयता के साथ समझौता किया जाता है। इस प्रकार, रैंकिंग के संदर्भ में सरकार और अन्य संगठनों को आँकड़ों की तीन प्रकार की बाध्यताओं का सामना करना पड़ता है।

पहला, भारतीय संस्थान रैंकिंग संगठनों को आँकड़े उपलब्ध कराने के प्रति उदासीन रवैया रखते हैं इसलिए ये आँकड़े हासिल करना कोई आसान काम नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि

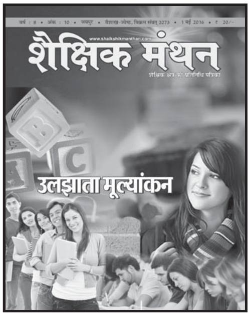

महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों की रैंकिंग की उपयोगिता के आकलन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक मापदंड उनकी विश्वसनीयता है। सवाल यह भी उठता है कि रैंकिंग करती आई विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और अब सरकार ने रैंकिंग के लिए इस विश्वसनीयता परीक्षण किया है। किसी भी रैंकिंग प्रणाली के संस्थानों के पास उपलब्ध आँकड़े और उन आँकड़ों की व्याख्या करने के लिए अपनाया गया तरीका ही अहम घटक होते हैं। इन दोनों की अपनी सीमाएँ हैं और कोई भी रैंकिंग प्रणाली इन दोनों की कसौटी पर पूरी तरह खरी नहीं उतरती, भले ही वे क्वाक्वैरली सिमंड्स (क्यूएस) तथा टाइम्स हायर एजुकेशन (टीएचई) जैसी अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग संस्थाएँ ही क्यों न हों। इसलिए इनकी सार्थकता पर सवाल उठना लाजिमी है।

भारतीय संस्थानों संबंधी ऑनलाइन जानकारी पूर्णत: उपलब्ध नहीं है। ये समय-समय पर अपडेट भी नहीं की जाती इसलिए इनमें प्रासंगिक जानकारियों का अभाव रहता है। यही वजह है कि रैंकिंग संस्थानों के लिए संस्थानों के आँकड़े जुटाना निहायत ही मुश्किल काम है। भारतीय रैंकिंग के संदर्भ में बात की जाए तो सरकार का इरादा छह प्रकार के शैक्षिक संस्थानों की रैंकिंग करने का है, ये हैं- विश्वविद्याालय, कॉलेज, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट, आर्किटेक्चर और फार्मेसी संस्थान।

अंत में तय किया गया कि कॉलेज और आर्किटेक्चर संस्थानों की रैंकिंग न की जाए क्योंकि इनमें से केवल कुछ ने ही आवश्यक आँकड़े उपलब्ध करवाए। इस तरह कम से कम उन 40 प्रतिशत छात्रों के लिए भारतीय रैंकिंग-2016 बेमानी हो जाती है जो कला, मानविकी या सामाजिक विज्ञान की डिग्री के लिए कॉलेज जाते हैं। दूसरी श्रेणियों में भी अपेक्षाकृत बहुत कम संस्थानों द्वारा उपलब्ध आँकड़ों से ही यह रैंकिंग तैयार की गई है। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालयों की रैंकिंग केवल 233 संस्थानों के आँकड़ों के आधार पर की गई है, जो कुल विश्वविद्यालयों की संख्या का मात्र 33 प्रतिशत है। इन संख्याओं और इस आधार पर कि केवल कुछ ही संस्थानों ने आँकड़े उपलब्ध नहीं करवाए, तो भी यह रैंकिंग प्रावधायी ही मानी जाएगी।

गुणवत्ता पर भी संशय

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात, उपलब्ध आँकड़ों की गुणवत्ता की भी समस्या है। जो आँकड़े उपलब्ध हैं, उनकी गुणवत्ता पर संशय है। कुछ निष्पक्ष स्रोतों से प्राप्त जानकारी पर भरोसा किया जा सकता है। जैसे, रैंकिंग संस्थाओं को आँकड़ों के लिए विश्वविद्यालयों या शोध पर निर्भर नहीं रहना पड़ता क्योंकि वे वेबसाइट और अन्य स्रोतों से यह जानकारी हासिल कर सकते हैं। हालांकि अन्य प्रकार के विश्वसनीय संस्थान-संकाय शिक्षकों की संख्या या संकायवार छात्रों की संख्या, लिंगानुपात तथा अन्य मापदंड की जानकारी स्वयं उपलब्ध करवा सकते हैं।

सरकार की स्थिति बेहतर

तीसरी बात यह है कि आँकड़ों की संख्या और गुणवत्ता की सीमाओं के बावजूद इनकी सत्यता को प्रमाणित करना सामान्य परिस्थितियों में अधिक महत्त्वपूर्ण है। उपलब्ध जानकारियों की वैधता प्रमाणित करने के संदर्भ में सरकार पत्र-पत्रिकाओं से बेहतर स्थिति में है क्योंकि इसके पास ज्यादा संसाधन हैं और ऐसा करने का अधिकार भी। दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं के पास न तो इतने संसाधन हैं और न ही इन पर जोर देने का अधिकार। साथ ही उनका मुनाफा भी इससे जुड़ा है और वे इन 'गैर लाभकारी' विभिन्न प्रकार की निजी संस्थाओं के विज्ञापन भी बड़ी उदारता से छापते हैं, जाहिर है इनके हित आपस में जुड़े हैं इसलिए इनकी रैंकिंग पर विश्वसनीयता सवालों के घेरे में है।

साख व शोध का पैमाना

अलग-अलग संस्थाएँ शैक्षिक संस्थाओं की रैंकिंग तय करने के लिए लगभग समान मैट्रिक्स लेकिन अलग-अलग तरीके अपनाती हैं जैसे कुछ शोध को काफी महत्त्व देती हैं तो कुछ साख को। वे अपने रैंकिंग को मिली समीक्षा के आधार पर उसे सुधारने के लिए लगभग हर साल रैंकिंग निर्धारण का अपना तरीका बदलते हैं। भारतीय रैंकिंग की एक समस्या विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक संस्थानों के वर्गीकरण का तरीका है।

इसके अनुसार एक शैक्षणिक संस्थान को एक ही श्रेणी में जगह दी जाएगी जबकि कई संस्थान एक से अधिक श्रेणी में फिट बैठते हैं इसलिए 'एक संस्थान, एक श्रेणी' का फार्मूला रैंकिंग पर सवालिया निशान है। उदाहरण के लिए हमारे आईआईटी संस्थान विश्व रैंकिंग में विश्वविद्यालयों की श्रेणी में रखे जाते हैं लेकिन भारत में इन्हें इंजीनियरिंग संस्थानों की गिनती में ही रखा जाता है, इससे विश्वविद्यालय रैंकिंग में वे संस्थान आगे आ जाते हैं, जो वास्तव में निचली पायदान पर होने चाहिए थे। 'एक संस्थान, एक श्रेणी' नियम का एक नुकसान यह भी है कि कुछ संस्थानों को अपेक्षाकृत निचली श्रेणी में जगह मिलती है।

उदाहरण के लिए इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फॉरेन ट्रेड (आईआईएफटी) को जबर्दस्ती विश्वविद्यालय, श्रेणी में स्थान दिया गया जबकि व्यावहारिक रूप से यह उस श्रेणी में नहीं है। विभिन्न संस्थानों के लिए विभिन्न रैंकिंग पैमाने भी समुचित नहीं है। जैसे उन विश्वविद्याालयों को शोध नतीजों और प्रभाव का पैमाना 40 प्रतिशत रखा गया है जो कि शिक्षण व शोध संस्थान माने जाते हैं लेकिन समान इंजीनियरिंग संस्थानों को मात्र 30 प्रतिशत ही दिया गया है जैसे कि आईआईटी संस्थान।

बरतनी होगी सावधानी

रैंकिंग भले सरकारी हो या समाचार पत्र-पत्रिकाओं की, आँकड़ों और प्रक्रिया के आधार पर इनमें कहीं न कहीं समझौता किया लगता है। बेहतर यही होगा कि छात्रों और अभिभावकों को इन रैंकिंग के आधार पर फैसला लेने में सावधानी बरतनी चाहिए।

संस्थानों का उदासीन रवैया

भारतीय संस्थान रैंकिंग संगठनों को आँकड़े उपलब्ध कराने के प्रति उदासीन रवैया रखते हैं इसलिए ये आँकड़े हासिल करना कोई आसान काम नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि भारतीय संस्थानों संबंधी ऑनलाइन जानकारी पूर्णत: उपलब्ध नहीं है। ये समय-समय पर अपडेट भी नहीं की जाती। ❑

(पी. पुष्कर सहा. प्रोफेसर, मानविकी एवं समाज शास्त्र विभाग बिट्स पिलानी, गोवा)

सरकार ने पल्ला झाड़ा तो कैसे चलेंगे विश्वविद्यालय

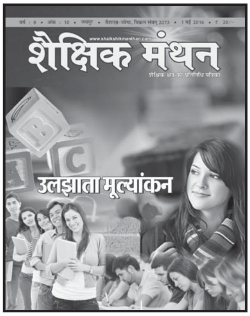

वास्तव में विविधता ही विश्वविद्यालयों की विशेषता और उनकी थाती रही है, लेकिन इससे वहाँ प्रशासन चलाने में दिक्कत भी होती है। हाल के वर्षों में परिसरों में विविधता बढ़ने के साथ ही यह चुनौती और भी विकट होती जा रही है क्योंकि बड़ी संख्या में ऐसे छात्र आते हैं, जिनके परिवार में शिक्षा हासिल करने वाले वे पहले व्यक्ति होते हैं। उन पर अलग तरीके से ध्यान दिए जाने की जरूरत होती है। उनकी और समाज के सभी वर्गों की आकाँक्षाएँ तेजी से बदल रही हैं। आकाँक्षाओं के कारण प्रशासन में दिक्कत आती है, लेकिन काम चुनौतीपूर्ण तो हो ही जाता है।

❑ प्रो. जांध्यला बी.जी. तिलक

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता और बेहतर प्रदर्शन पर बातचीत तो होती ही रही है। लेकिन पिछले कुछ महीनों में नामी गिरामी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में हुई कुछ घटनाओं ने इन संस्थानों के प्रशासन को चर्चा में ला दिया है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय के प्रभारी कुलपति जांध्यला बी जी तिलक ने अदिति फडणीस के साथ बातचीत में देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में होते बदलाव, छात्र पलायन और शिक्षा बजट जैसे तमाम विषयों पर चर्चा की। मुख्य अंश:

हैदराबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में छात्रों के बीच पनपे आक्रोश और उनके विरोध प्रदर्शन को हम सभी ने देखा। क्या आपको लगता है कि अब कुलपति के पास मौजूद अधिकारों और उनकी भूमिका पुनराकलन करना चाहिए?

इन विषयों पर मैं ज्यादा कुछ जानता नहीं हूँ। मैंने जो भी समझा है, वह मीडिया से ही सुना-देखा है। इसलिए मैं इन घटनाओं पर बात नहीं करूँगा और उसके बजाय मुद्दे पर बात करना पसंद करूँगा। विश्वविद्यालय किसी कंपनी या किसी कारखाने से बिल्कुल अलग होते हैं, इसलिए उन्हें चलाना ज्यादा चुनौतीपूर्ण काम होता है। विश्वविद्यालय ऐसी संस्था होते हैं, जिनमें कई प्रकार के उद्देश्य होते हैं। वे कई प्रकार के काम करते हैं और एक अलग किस्म का तथा बेहद कीमती नतीजा आपके सामने पेश करते हैं, जो किसी वस्तु की तरह दिखाई नहीं देता। इन नतीजों पर बाहरी कारकों का भी सीधा और छिपा असर होता है। विश्वविद्यालय बेहद जटिल संस्था है, जिनमें अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक, क्षेत्रीय एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले छात्र तथा शिक्षक आते हैं। अगर उनके तौर-तरीके, उनके व्यक्तित्व की बनावट और उनका काम करने का तरीका एक जैसा हो तो प्रशासन बहुत आसान हो जाएगा, लेकिन यह 'विश्वविद्यालय' के मूल विचार से ही मेल नहीं खाएगा। वास्तव में विविधता ही विश्वविद्यालयों की विशेषता और उनकी थाती रही है, लेकिन इससे वहाँ प्रशासन चलाने में दिक्कत भी होती है। हाल के वर्षों में परिसरों में विविधता बढ़ने के साथ ही यह चुनौती और भी विकट होती जा रही है क्योंकि बड़ी संख्या में ऐसे छात्र आते हैं, जिनके परिवार में शिक्षा हासिल करने वाले वे पहले व्यक्ति होते हैं। उन पर अलग तरीके से ध्यान दिए जाने की जरूरत होती है। उनकी और समाज के सभी वर्गों की आकाँक्षाएँ तेजी से बदल रही हैं। आकाँक्षाओं के कारण प्रशासन में दिक्कत आती है, लेकिन काम चुनौतीपूर्ण तो हो ही जाता है।

शिक्षा को सांविधिक अधिकार बनाए जाने के बाद इस क्षेत्र में तेजी आई है। सरकार ऐसे नये संस्थानों और और नए प्रयोगों के लिए पूँजी जुटाने के लिए क्या कर रही है?

पिछली एक सदी में शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ है। आज हमारे देश में 2.5 करोड़ लोग उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हैं। यह आँकड़ा कुछ देशों की जनसंख्या से अधिक भी है। लेकिन छात्रों की बढ़ती संख्या के साथ सार्वजनिक कोष में बढ़ोतरी नहीं हुई और न ही योग्य शिक्षक और बुनियादी सुविधाओं का बेहतर इंतजाम किया गया। नतीजा यही हुआ कि शिक्षा क्षेत्र मुश्किलों से जूझ रहा है। यह चलन सिर्फ भारत तक सीमित नहीं है बल्कि तमाम विकासशील देश और कुछ विकासशील समाज भी इससे जूझते नजर आ रहे हैं। बहुतेरे देश नए विकल्पों के साथ प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन इनका क्षेत्र भी सीमित हैं। भारत उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पैदा होती माँगों को पूरा करने की कोशिश कर रहा है लेकिन ये पर्याप्त नहीं है। नए विश्वविद्यालय और कॉलेज बनाए जा रहे हैं, इनकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। हमें अब भी शिक्षकों की कमी जैसी समस्याओं को दूर करके गुणवत्ता में सुधार के तरीके खोजने होंगे। सरकार द्वारा संक्षिप्त रूप से इन दोनों समस्याओं से निपटने के लिए 'पंडित

मदन मोहन मालवीय राष्ट्रीय शिक्षक एवं शिक्षण अभियान' आरंभ किया गया। कुछ कदम उठाए गए हैं और कुछ नए कदम उठाने की जरूरत है। उच्च शिक्षा को लेकर गंभीरता पैदा हुई है, लेकिन इस क्षेत्र में और भी कोशिशें की जानी चाहिए।

सबसे प्रतिभाशाली छात्र प्रबंधन संस्थानों और आईआईटी आदि में चले जाते हैं। लेकिन उन संस्थानों के प्रशासन में दखलअंदाजी से दिक्कतें पैदा हो रही हैं। इसे कैसे ठीक किया जा सकता है?

हमें इस विषय को ठीक से समझने की आवश्यकता है। मामल पेचीदा है और तमाम देशों में उच्च शिक्षण संस्थान इससे जूझ रहे हैं। आज पूरी दुनिया ने उच्च शिक्षा को एक बड़ी सामाजिक जिम्मेदारी माना है और हम सभी मानते हैं कि सरकार को इसमें बड़ी भूमिका निभानी चाहिए। लेकिन हम यह भी चाहते हैं कि विश्वविद्यालयों तथा दूसरे उच्च शिक्षा संस्थानों को अच्छी खासी स्वायत्तता भी मिले ताकि वे ठीक से फल-फूल सकें। दोनों की ही हदें तय नहीं की जा सकीं। सरकार और विश्वविद्यालयों के बीच के रिश्ते विश्वविद्यालयों के विकास पर निर्भर करते हैं, नेताओं के ज्ञान और समाज के विकास तथा राजनीतिक तंत्र की परिपक्वता पर निर्भर करते हैं। अगर सरकार बाजार का साथ देने के लिए पल्ला झाड़ती है तो उच्च शिक्षा में हाय तौबा मच जाती है। अगर वह ज्यादा दखल करने लगती है तो विश्वविद्यालयों की व्यवस्था बिगड़ने लगती है। अगर सरकार उच्च शिक्षा के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ेगी तो कोई भी उसे सही नहीं कहेगा।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ढाँचागत सुधारों ने तमाम विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपने केंद्र खोलने के लिए प्रेरित किया है। लेकिन इन विश्वविद्यालयों द्वारा ऐसे केंद्र स्थापित नहीं किए गए हैं। स्थानीय प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने के कारण आज बच्चों को एक साधारण सी डिग्री के लिए ऑस्ट्रिया और अमेरिका तक जाना पड़ता है? इसका क्या समाधान है?

भारत के छात्रों के किसी दूसरे देश में जाकर पढ़ने या अन्य देशों के छात्रों के बाहर जाने से हो रहे पलायन ने अंतरराष्ट्रीयकरण जैसे नए सिद्धांत और नई प्रक्रिया को जन्म दिया है। यह सिद्धांत पिछली कई शताब्दियों से चलन में हैं, लेकिन अब इनका प्रारूप बदल गया है। विश्वविद्यालयों द्वारा विदेशी छात्रों के आगमन को प्रोत्साहित किया जाता रहा है ताकि कैंपस में विविधताओं को बढ़ावा दिया जा सके। लेकिन आज इसका स्वरूप पूरी तरह से बदल चुका है। विकसित देशों के विश्वविद्यालय विदेशी छात्रों को एक संसाधन के रूप में देखते हैं। अंतरराष्ट्रीयकरण में शामिल उद्देश्यों ने आज इसे व्यापार करने योग्य 'वस्तु' भी बना दिया है। इसलिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत, विदेशी संस्थानों को चुनने में काफी सतर्कता बरत रहा है क्योंकि हम यहाँ उच्च और गुणवत्तापूर्ण केंद्र ही खोलना चाहते हैं। अंतरराष्ट्रीयकरण का उद्देश्य शिक्षा क्षेत्र को और समृद्ध बनाना होना चाहिए और इसे महज व्यापार या वित्तीय लाभ के नजरिये से नहीं देखा जाना चाहिए। इससे इतर हमें हमारे विश्वविद्यालयों को शिक्षा के उच्च केंद्रों के रूप में विकसित करना चाहिए। ये कदम तमाम विदेशी छात्रों को भारत की ओर आकर्षित करेंगे और भारतीय छात्रों को विदेश जाने से रोकेंगे।

मिशनरी और चैरिटी संस्थान उच्च शिक्षा मुहैया करा पाते हैं लेकिन सरकारी विद्यालय इस तरह के मॉडल को क्यों नहीं लागू कर पाते?

सार्वजनिक क्षेत्र के भी कुछ संस्थान उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं। कुछ निजी संस्थान भी अच्छा कर रहे हैं, जो पहले समाजसेवा या परोपकार की भावना से स्थापित किए गए थे। वे अच्छा कर रहे हैं क्योंकि उनका जोर शिक्षा पर अधिक है। लेकिन अन्य निजी संस्थानों के साथ समस्या है कि वे कारोबारी भावना के साथ इस क्षेत्र में है और जल्द से जल्द लाभ कमाना चाहते हैं। शिक्षा पर ध्यान देना इनका प्राथमिक उद्देश्य नहीं है। कुछ सार्वजनिक विश्वविद्यालय अच्छा कर रहे हैं क्योंकि इनमें शिक्षा को लेकर जुनून भी है और शोध को लेकर निजी प्रतिबद्धताएँ भी। हालांकि शिक्षकों की कमी भी शिक्षा के स्तर में गिरावट का कारण हैं और आज देश के तमाम विश्वविद्यालयों की एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

वर्ष 2016-17 के लिए निर्धारित बजट में शिक्षा क्षेत्र में किए आवंटन को लेकर आपका क्या विचार है?

इस बजट में शिक्षा क्षेत्र के लिए जो आवंटन किया गया है वह पिछले वर्षों के बजट से तो बेहतर है। इस वर्ष स्कूली शिक्षा के लिए 1,300 करोड़ रुपये और उच्च शिक्षा के लिए 3,400 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। सरकार ने 62 नये नवोदय विद्यालय खोलना प्रस्तावित किया है। हालांकि कुछ लोगों का यह भी तर्क है नवोदय विद्यालय उच्च वर्गों को आकर्षित करता है लेकिन यहाँ यह समझना होगा कि मौजूदा सामाजिक-आर्थिक और शैक्षणिक असमानताओं के बीच, जहाँ शहरी और ग्रामीण शिक्षा में बहुत अंतर है, वहाँ कम से कम ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को ये नवोदय स्कूली शिक्षा तो मुहैया कराते हैं। ये विद्यालय इसी उद्देश्य पर काम करते हैं कि अच्छी स्कूली शिक्षा सिर्फ शहरी बच्चों के लिए ही नहीं है। बड़े स्तर पर सार्वजनिक स्कूलों को स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। अन्य प्रावधानों में उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए वित्तीय एजेंसी को स्थापित करना और साथ ही इस दिशा में नियामक भी लाना प्रस्तावित है। वर्तमान में कुछ विश्वविद्यालयों पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश की गई है, जिसमें जल्द ही ज्यादातर विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा केन्द्रों को शामिल किया जाएगा। ❑

पुस्तक विमोचन एवं व्याख्यान

बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षिक अवदान

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा एस. एस. जैन सुबोध कॉलेज, रामबाग सर्किल के सभागार में ''बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक अवदान'' विषय पर दिनांक 24 अप्रैल 2016 को एक व्याख्यान का आयोजन किया गया।

मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के क्षेत्र कार्यवाह, हनुमान सिंह राठौड़ ने कहा कि बाबा साहब ने उस समय यह घोषणा की थी, कि जो मैनें शिक्षा प्राप्त की है, वह मेरे व मेरे परिवार के लिये ही नहीं है, वरन यह सर्वहित व दलित समाज के लिये भी है। उन्होंने शिक्षित बनो, संगठित रहो, व संघर्ष करो की प्रेरणा दी। दलित समाज में समाजिक स्वतंत्रता होनी चाहिये। तब यह समाज समाजिक रूप से अपना उत्थान कर सकता है। उन्होंने बताया कि अंग्रेजों द्वारा भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का ध्वंस किया गया। उनका विचार था कि जहाँ तक वर्तमान यथार्थ स्थिति का सम्बन्ध है उन्होंने स्वीकार किया और मिसाल दी कि मुम्बई के स्कूल में, जो दलित वर्गों के लिए है, वहाँ अनेक उच्च जाति के छात्र हैं, वह एक अच्छा विद्यालय है। उसी प्रकार स्वयं डॉ. अम्बेडकर प्रोफेसर हैं और दलित वर्ग के हैं। सभी वर्गों के छात्र उनके शिष्य हैं, और उन्हें उच्च जाति के छात्रों को पढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होती है। एक अच्छा शिक्षण संस्थान और अच्छा अध्यापक होने पर जाति के रूढिवादी बंधन टूटते हैं, और अंग्रेज यही नहीं चाहते थे। उनका उद्देश्य 'फूट डालो और राज करो' वैमनस्य फैलाने पर ही फलीभूत होता। लोगों के राजनैतिक विस्तार के लिए आत्मा और बुद्धि की शुद्धि पहले जरूरी है। आत्मा और बुद्धि की शुद्धि ही सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला है।

शिक्षा ही दलित समाज के उद्धार का एक मात्र मार्ग है। अपना विकास स्वयं करना होगा, यद्धपि हम गरीब हैं पर हमारे पास संख्या बल है यदि दो लाख लोग आठ आना देते हैं तो लगभग एक लाख वार्षिक जमा होता है। इसका अस्पृश्यों के विकास के लिए उपयोग किया जाए। हमें अपने लोगों की क्षमता विकसित करने के लिए सशक्त प्रयत्न करने होंगे। यदि गुणों में समानता होगी तो समय के साथ जाति आधारित पक्षपात तथा अस्पृश्यता विलुप्त हो जायेगी। यह गुणों में समानता शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा के अभाव में ही दलितों ने अत्याचार सहे।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. संजय पासवान, प्रोफेसर पटना विश्वविद्यालय व पूर्व केंद्रीय मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री ने बताया कि डॉ.अम्बेडकर के अनुसार सत्ता, समृद्धि, सम्मान व समाज में सहभागिता होनी चाहिए। दलितों के लिये संघ परिवार ने जो किया है, उसके लिए दलित समाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ऋणी है। उन्होंने अम्बेडकर शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि अम्बेडकर एक मिशन है, जो कि समाजिक समरसता एवं समाजिक समृद्धि में विश्वास करता है। आज समाज शिक्षित तो हो गया है पर ज्ञान व तर्क का अभाव आज भी है। आज के समय में अम्बेडकर की पहचान एक 'लैण्डमार्क' के रूप में होनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति को समाज में आगे आना चाहिए जो पूरे समाज के लिये स्वीकार्य हो।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए राजस्थान विधान सभा अध्यक्ष श्री कैलाश मेघवाल ने कहा कि डॉ.अम्बेडकर ने जो संविधान की प्रस्तावना लिखी है यदि हम उसी को लागू करे तो देश में काफी सकारात्मक परिवर्तन आ जायेगा। बाबा साहब के अनुसार समाज को समाजिक न्याय, राजनीतिक न्याय, आर्थिक न्याय व शैक्षिक न्याय सबके लिये समान होना चाहिये। कुछ लोग आज बाबा साहब को लेकर वोट बैंक की राजनीति कर रहे हैं। वह निश्चय ही गलत है। सन् 1952 में डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर को लोकसभा में जाने से जिस सरकार में बैठे लोगों ने रोका वही लोग आज सामाजिक न्याय की बात कर रहे हैं। उन्होंने हनुमान सिंह राठौड़ द्वारा लिखित पुस्तक ''बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर: शैक्षिक अवदान'' का जिक्र करते हुये कहा कि इस पुस्तक में बताये गये मार्ग पर चले तो आज के युवा पीढ़ी में चेतना जाग्रत होगी। इस पुस्तक को विद्यालयों में भी लागू किया जाना चाहिये।

कार्यक्रम में राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जे.पी.सिंघल ने कहा कि शैक्षिक अवदान को कुछ शब्दों में कहना ठीक नहीं है। बाबा साहब केवल दलित उत्थान तक सीमित नहीं रहे वरन उन्होंने पूरे मानव समाज के उत्थान की बात की। शिक्षा का प्रबंधन जब तक नौकरशाही व राजनीति से पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होगा तब तक शिक्षा स्वायत्त नहीं हो सकती। उन्होंने शिक्षा हेतु एक अलग आयोग बनाने की बात कही। बाबा साहब ने 100 वर्ष पहले ही खुला विश्वविद्यालय की परियोजना बना ली थी। छात्रावास, आवासीय शिक्षा पुस्तकालय, स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि सभी पर जोर दिया।

इस शुभ अवसर पर हनुमान सिंह राठौड़ द्वारा लिखित पुस्तक ''बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर : शैक्षिक अवदान'' का विमोचन किया गया।

अतिथियों का परिचय भरत शर्मा ने कराया। सुबोध महाविद्यालय के प्राचार्य प्रो.के.बी.शर्मा ने पधारे अतिथियों का स्वागत किया। कार्यक्रम के अंत में महासंघ के अध्यक्ष डॉ.विमल प्रसाद अग्रवाल ने सभी का आभार व्यक्त किया।

कार्यक्रम में महेन्द्र कपूर, राष्ट्रीय संगठन मंत्री, अ.भा.रा.शै. महासंघ, राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष बजरंग प्रसाद मजेजी, प्रकाशन प्रकोष्ठ प्रमुख विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी तथा महानिदेशक डॉ. अम्बेडकर पीठ कन्हैया लाल बैरवाल, आदि अनेक गणमान्य लोग उपस्थित रहे।

रुक्टा (राष्ट्रीय)

प्रदेश में नवसंवत्सर पर अनेक कार्यक्रम

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी नव संवत्सर (विक्रम संवत्) 2073 का स्वागत रुक्टा (राष्ट्रीय)की विभिन्न इकाइयों द्वारा धूमधाम से किया गया। इस अवसर पर भारतीय कालगणना के महत्त्व पर संगोष्ठियाँ आयोजित की गई तथा महाविद्यालय, विश्वविद्यालय परिसर एवं सार्वजनिक चौराहों पर आगंतुकों को तिलक एवं प्रसाद के साथ शुभकामनायें दी गई। राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में आयोजित संगोष्ठी में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर के अध्यक्ष डॉ. बी.एल. चौधरी ने मुख्यवक्ता के रूप में भारतीय कालगणना की वैज्ञानिकता को बताया। कार्यक्रम में प्रदेश महामंत्री ने नवसंवत्सर के ऐतिहासिक एवं सामाजिक महत्त्व को बताया।

राजकीय महाविद्यालय, बारां में आयोजित संगोष्ठी के मुख्य वक्ता ए.बी.वी.पी. के चित्तौड़ प्रान्त प्रमुख श्री दिनेश शर्मा रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता विभाग अध्यक्ष डॉ. के. एम. मीणा ने की। अलवर के राजर्षि महाविद्यालय, कला महाविद्यालय एवं कन्या महाविद्यालय के शिक्षक साथियों ने रेल्वे स्टेशन के सामने ढोल-ढमाके के साथ नूतन वर्ष स्वागत कार्यक्रम आयोजित किया। इस अवसर पर सदस्यों ने समाजजनों को तिलक लगाकर मिठाई वितरण के साथ शुभकामनायें दी। आयुक्तालय, जयपुर में आयोजित नवसंवत्सर कार्यक्रम में शिक्षक साथियों ने एक दूसरे के तिलक व मोली बाँध कर नववर्ष की बधाई दी। राजकीय महाविद्यालय, कोटा में इकाई सदस्यों एवं विद्यार्थियों ने सभी आगंतुकों का महाविद्यालय द्वार पर तिलक व प्रसाद वितरण के साथ स्वागत किया।

राजकीय महाविद्यालय, दौसा में प्रदेश महामंत्री के मुख्य आतिथ्य में नवसंवत्सर पर संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रो. अमिता गिल ने की जबकि विशिष्ट अतिथि कन्या महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. शंकर लाल शर्मा थे। राजकीय महाविद्यालय, चूरु में आयोजित कार्यक्रम में भारतीय संस्कृति एवं कालगणना के महत्व पर डॉ. सुरेन्द्र डी. सोनी, प्रो. एल. एन. आर्य, प्रो. याकूब अली आदि ने विचार व्यक्त किये। राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर में आयोजित संगोष्ठी के मुख्यवक्ता चित्तौड़ संभाग के संगठन मंत्री डॉ. सुशीलकुमार बिस्सू रहे। संगोष्ठी में डॉ. अतुल कुमार शर्मा ने भी अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. रेणु शर्मा ने की। राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में नवसंवत्सर पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई। जिसमें विभाग सेवा प्रमुख डॉ. रामप्रताप पेंसिया ने भारतीय कालगणना के वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर उद्‌बोधन दिया। अध्यक्षता प्राचार्य प्रो. सरवणसिंह ने की। राजकीय महाविद्यालय, केकड़ी में इकाई सदस्यों ने महाविद्यालय के सभी शिक्षकों एवं गैर शैक्षणिक कर्मचारियों के तिलक एवं मोली बांध कर नव वर्ष की शुभकामनायें दी। अध्यक्षता प्राचार्य डॉ. ओ. पी. माहेश्वरी ने की। राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर में भारतीय कालगणना के महत्व पर आयोजित संगोष्ठी के मुख्यवक्ता संस्कृत शिक्षा के संभाग अधिकारी डॉ. भगवती शंकर व्यास ने बताया कि सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथ्वी की गतियाँ, ऋतु परिवर्तन, अयन संक्रमण तथा संवत्सर यह सभी पंच महाभूतों व मानव शरीर विज्ञान से भी जुड़े हैं। विचार गोष्ठी की अध्यक्षता प्राचार्य प्रो. रामेश्वर आमेटा ने की।

मा. मुख्यमंत्री व मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री से मिला प्रतिनिधिमंडल

रुक्टा (राष्ट्रीय) के प्रतिनिधिमंडल ने पदनाम परिवर्तन को लेकर मुख्यमंत्री श्रीमती वसुन्धरा राजे व मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री से भेंट की। संगठन ने दोनों के समक्ष देश के विभिन्न राज्यों में यू.जी.सी. रेग्यूलेशन के अनुसार परिवर्तित पदनाम का तुलनात्मक वृत्त प्रस्तुत करते हुए राज्य के शिक्षकों एवं व्यापक रूप से राज्य के उच्च शिक्षा क्षेत्र को हो रहे नुकसान की जानकारी दी। पिछली सरकार द्वारा गलत घोषणा पत्र देकर केन्द्र सरकार से अनुदान लेने संबंधित दस्तावेज उन्हें प्रस्तुत करते हुए उच्च शिक्षा मंत्री श्री कालीचरण जी सराफ द्वारा की गई घोषणा के उपरांत भी पदनाम परिवर्तन नहीं होने पर हताश शिक्षक समुदाय की भावनाओं को मुख्यमंत्री जी व मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री जी के सामने व्यक्त किया गया। दोनों ने गंभीरतापूर्वक सभी तथ्यों को विस्तार से समझा तथा शीघ्र ही इस विषय में सकारात्मक निर्णय लेने हेतु संगठन को आश्वस्त किया।

पदनाम परिवर्तन के लिए हस्ताक्षर एवं विधायकों के समर्थन पत्र

रुक्टा (राष्ट्रीय) ने राज्यपाल महोदय, उच्च शिक्षामंत्री जी एवं उच्च शिक्षा विभाग के अधिकारियों से देश के विभिन्न राज्यों के पदनाम परिवर्तन आदेशों एवं अन्य दस्तावेजों के साथ अनेक बार भेंट कर राजस्थान में महाविद्यालय शिक्षकों के पदनाम परिवर्तन की माँग की है। बहुत कम अतिरिक्त वित्तीय भार होने के बावजूद राज्य सरकार की उदासीनता के कारण महाविद्यालय शिक्षकों का पदनाम नहीं बदल सका है। संगठन ने इकाईश: मुख्यमंत्री को प्रेषित ज्ञापन पर शिक्षकों के हस्ताक्षर का अभियान हाथ में लिया गया, साथ ही स्थानीय जनप्रतिनिधियों से मिल कर समर्थन पत्र लिखवाना तय किया।

जयपुर में एक दिवसीय संगोष्ठी

शिक्षक प्रशिक्षण-चुनौतियां एवं सम्भावनायें

डॉ. राधाकृष्णन शिक्षा संकुल, जयपुर के सभागार में शैक्षिक मंथन संस्थान के द्वारा 1 मई 2016 को शिक्षक प्रशिक्षण-चुनौतियाँ एवं सम्भावनायें विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में प्रदेश के बी.एड. कॉलेज के शिक्षकों व प्रधानाचार्यों ने भाग लिया।

संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में संस्थान के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने शिक्षक प्रशिक्षण की प्रबंध व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा कि निजी महाविद्यालयों की समस्यायें तो अनेक है, लेकिन हमें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करते हुए पाठ्यक्रमों को प्रभावी बनाना चाहिए। बी.एड. के दो वर्ष की अवधि का समर्थन करते हुए कहा कि दो वर्ष में अच्छे शिक्षक तैयार हो सकते हैं। दो वर्ष का पाठ्यक्रम बनाने वाले भी हम शिक्षक ही है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में नवाचारों को लागू किया जाना बहुत जरूरी है।

मुख्यवक्ता प्रो. मथुरेश्वर पारीक, राजस्थान विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष ने कहा कि किसी भी व्यक्ति को मजबूरी में शिक्षक नहीं बनना चाहिए। शिक्षक को सामाजिक दायित्व को समझना चाहिए। बी.एड. में प्रवेश प्रक्रिया मेरिट के आधार पर होनी चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण में प्रयोगात्मक कार्य पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। शिक्षक सूचना देने वाले न होकर छात्रों में आदर्श भाव जाग्रत करने वाले हो, क्योंकि सूचनायें तो इन्टरनेट पर भी उपलब्ध है। पूरे भारत में शिक्षक प्रशिक्षण का शुल्क राजस्थान में ही सबसे कम लिया जा रहा है।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जयपुर के प्रो. संतोष मित्तल ने बताया कि शिक्षकों को आत्म मल्यांकन करने की आवश्यकता है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए बी.एड. महाविद्यालयों का माध्यमिक विद्यालयों से जोड़ा जाना चाहिए। केवल पाठ्यक्रमों की अवधि बढ़ाने से गुणवत्ता में सुधार संभव नहीं है।

संगोष्ठी के प्रथम तकनीकी सत्र में प्रो. वाई. एस. रमेश ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की उपयोगिता बताते हुए कहा कि पाठ्यक्रम सभी महत्त्वपूर्ण है इन्हें सही तरीके से पूरा किया जाना चाहिए। उन्होंने कक्षा कक्ष में छात्रों से संवाद कैसे स्थापित किया जाए इसके बारे में प्रकाश डाला। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को आदर्श विद्यालयों से जोडा जाना चाहिए, जिससे शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता बढ सकती है। उन्होंने बी.एड. को आवासीय बनाने का सुझाव दिया। प्रो. रजनी शर्मा ने बताया कि आज जो शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है, इसे रोका जाना चाहिए। अध्यक्षता करते हुए आयुक्तालय की संयुक्त निदेशक डॉ. ज्योत्सना भारद्वाज ने भाषायी कौशल पर जोर दिया। शिक्षक प्रशिक्षण पाठयक्रमों में कम्प्यूटर की महत्ता बताई।

संगोष्ठी के दूसरे तकनीकी सत्र में प्रो. सुदेश कुमार शर्मा ने बताया कि शिक्षा का मतलब सीख है। पाठ्यक्रमों में उपलब्ध भाषायी पुस्तकों पर जोर देते हुए शिक्षा में समग्रता की बात कही। शिक्षक प्रशिक्षकों को समय समय पर होने वाले रिफ्रेशर पाठयक्रमों में भाग लेना चाहिए। जिससे शिक्षक प्रशिक्षण में हो रहे नवाचारों का लाभ छात्रों को मिल सके।

डॉ. यदु शर्मा ने बताया कि गुणवत्ता कभी मात्रात्मक नहीं होती है। प्रशिक्षण स्वयं प्रेरित प्रक्रिया है। उन्होंने प्रशिक्षण से जुड़े वेतनमान, योग्यता व संस्थान की प्रबंध व्यवस्था पर गहराई से प्रकाश डाला। शिक्षक प्रशिक्षकों के स्थाईकरण व सुरक्षा की आवश्यकता है।

अध्यक्षता करते हुए आयुक्तालय के संयुक्त निदेशक डॉ. विनय शर्मा ने कहा कि मूल्यांकन प्रक्रिया निष्पक्ष होनी चाहिए। प्रवेश प्रक्रिया में न्यायालय के निर्देशों को मानने के लिए हम बाध्य हो जाते हैं। इसलिए प्रवेश की समय अवधि बढ जाती है। सरकार जल्द ही एक नियामक आयोग ला रही है। जिससे व्यवस्था पारदर्शिता आएगी।

समापन सत्र में अध्यक्षीय उद्बोधन शैक्षिक मंथन के संपादक प्रो. संतोष पांडेय ने बताया कि हमारी शिक्षा व्यवस्था समग्र होनी चाहिए। वर्तमान में समग्र शिक्षा में शिक्षक प्रशिक्षण की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा आगामी 15 वर्षों में पूरे देश के परिदृश्य को बदलेगी और इस बदलते हुए परिदृश्य के अनुरूप क्या परिवर्तन लाए जाने चाहिये यह महत्त्वपूर्ण है।

भारत के वैश्विक शक्ति के रूप में उभरने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी, जिसमें कौशल विकास, मेक इन इंडिया जैसे कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप जो परिदृश्य बदलेगा उसके अनुरूप शिक्षा व शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था में परिवर्तन होगा। मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन स्वयं एक चुनौती है। चाहे वह पारम्परिक परीक्षा पद्धति हो या सतत् व समग्र मूल्यांकन की सफलता अंततः शिक्षकों पर ही निर्भर करती है। यदि शिक्षक इन अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे तो समाज की हानि संभव है। इस चुनौती से निपटने के लिए देशानुकूल व समयानुकूल निर्णय आवश्यक है।

अन्य वक्ताओं में प्रो. अशोक शर्मा, डॉ. रामअवतार खंडेलवाल, व डॉ. स्निग्धा शर्मा रहे। विषय प्रवर्तन संगोष्ठी के संयोजक डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा ने व आभार प्रदर्शन भरत शर्मा ने किया।

कार्यक्रम के सत्र संचालक डॉ. ओमप्रकाश पारीक, डॉ. दिलीप गोयल, डॉ. मुकेश शर्मा व डॉ. अरुण रघुवंशी रहे।